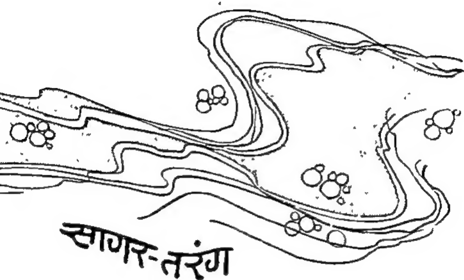
गुरुदत्त



प्राक्कथन

इतिहास के महापण्डित कविवर कल्हण, सुपुत्र महामात्य चम्पक, अपने पिता के निवास-भवन के एक बैठकघर में बैठा अपने पूर्ण ग्रन्थ में लिखे इतिहास पर चिन्तन कर रहा था। अपने देश की अवस्था पर खिन्न मन से अवलोकन करते हुए अत्यन्त दुःख अनुभव कर रहा था। कश्मीर-नरेश महाराज जयचन्द अपने राज्य के महामात्य पण्डित चम्पक से राज्य-सम्बन्धी गोष्ठी कर रहे थे। उनकी गोष्ठी समाप्त हुई और दोनों एक अन्य बैठकघर से निकल भवन के द्वार की ओर जाने लगे तो महाराज की दृष्टि कल्हण पर जा पड़ी। फिर कुछ विचार कर बैठकघर मे प्रवेश करते हुए कल्हण को सम्बोधन किया, "कविवर कल्हण! क्या हो रहा है?"

कल्हण महाराज को बैठकघर मे प्रवेश करते देख उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड प्रणाम कर बोला, "महाराज! अपने देश के दुर्भाग्य पर मन ही मन आसू बहा रहा था। मैं विचार कर रहा था कि पिछले बीस वर्ष मे इस देश में चालीस से ऊपर शासक राज्यगद्दी को कलंकित कर चुके है। प्रायः सब अपने पूर्वज की हत्या कर ही राज्यगद्दी प्राप्त कर सके हैं और इस घोर पाप करने पर भी ले-देकर प्रति शासक छ. मास से अधिक काल तक राज्य नही कर सका। इतना ही उनके भाग्य मे बदा था।"

महाराज जयचन्द ने उत्साहवर्धन के लिए कह दिया, "अब ऐसा नही होगा।"

"महाराज ! ऐसी ही आशा करता हूं। इसपर भी हमारे देश के साहित्य में यह किंवदन्ती है :

नापुंश्चलेयो दुःशीलो नाद्रोहो नित्यशङ्कितः।
नावाचालो मृषाभाषी नाकायस्थः कृतघ्नधीः।"[१]

महाराज जयचन्द हंस पड़े और बोले, "हां। हम यह जानते हैं। केवल कायस्थ के विषय में नई बात सुनी है।"

"इसपर भी है सत्य ही। प्रायः कायस्थ कार्यालयों में कर्मचारी होते हैं और कार्यालयों में कार्य करनेवाले, चाहे वे कार्यालय राजकीय हों और चाहे वे निजी उद्योग-व्यापार-सम्बन्धी हों, कभी सुख अनुभव नहीं कर सकते।

"परन्तु महाराज, इन तीनों का राज्य के पतन से सम्बन्ध है।"

"यही तो जानना चाहता हूं कि कैसे ?"

कवि, महाराज की रुचि उसके इतिहास में देख बोला, "यदि आपके पास समय हो तो सुनाता हूं। सुनिए :

"गोदावरी सरिदिवोत्तुमुलैस्तरङ्गैर्वक्त्रैः स्फुटं सपदि सप्तभिरापतन्ती।
श्रीकान्तिराजविपुलाभिजनाब्धिमध्यं विश्रान्तये विशति राजतरङ्गिणीयम् ॥"[२]

"तो हम लोग जन-सागर में तरंगें-मात्र हैं ?"

"हां, महाराज ! भाग्य की वायु से उछाली जाती हुई तरंग-मात्र ही। वास्तव में सब राजे-महाराजे जन-जलधि का अंश-मात्र ही हैं। भाग्य की वायु जब तक चलती रहती है, ये उछल-कूद मचाते रहते हैं। जहां भाग्य शान्त हुआ कि ये सामान्य जन-मानस की भांति ही इस जन-सागर में समा जाते हैं।"

---

१. वेश्या-पुत्र के समान शीलरहित (बेशर्म) कौन होगा ? (मित्र से) द्रोह करनेवाले से अधिक भयभीत कौन होगा ? बहुत बोलनेवाले से अधिक झूठ कौन बोल सकता है ? और कायस्थ से अधिक दुखी कोई नहीं हो सकता।

२. जैसे गोदावरी सात मुखों से निकल तथा ऊंची-ऊंची तरंगों में बहती हुई समुद्र में जा विश्राम करती है, उसी प्रकार जन-प्रवाह की नदी में राजे-महाराजे तरंगों की भांति उछल-कूद मचाते हुए जन-सागर में मिलते दिखाई दिए हैं।

"परन्तु हम तो अपने को भगवान की विशेष कृपा का पात्र मानते हैं। इस कारण जब हम दूसरों पर शासन करते हैं तो अपने को उनसे ऊंचा मान ही तो अपना कर्म कर सकते हैं।"

"यह ठीक है, महाराज ! भगवान की कृपा को ही मैं वायु कहता हूं। यह वायु ही भगवान की शक्ति है, जो सब मानवों से उनके कर्मफल के अनुसार कर्म कराती है। भगवान का इस शक्ति के प्रवाह में अपना कुछ भी प्रयोजन नहीं। वह तो जन-जन के भाग्य को उनके कर्मानुसार देता रहता है और जब कर्मफल समाप्त होते हैं तो ऊंचे उड़नेवाले घोर मोह में भी जा पड़ते हैं।"

"समझा नहीं, कविवर !"

"तो बैठिए और सुनिए ! इतिहास का एक पृष्ठ ही सेवा में निवेदन करूंगा।"



सागर-तरंग

•

प्रथम परिच्छेद

विन्ध्याचल पर्वत पर बीहड जगल मे अमोघदर्शना भ्रमरवासिनी देवी का मदिर था। कोई भूला-भटका हुआ यात्री उस घने जगल मे सायकाल इस देवी के मन्दिर मे पहुचा और रात विश्राम करने के लिए वहां सो गया। सोए हुए उसे स्वप्न मे देवी के दर्शन हुए और वह स्वप्न मे ही उसके अनुपम रूप-सौन्दर्य पर मोहित हो देखता रह गया। देवी ने पथिक को कहा, "मागो! क्या वर चाहते हो?"

स्वप्न लेनेवाला यात्री जुआरी था। इस कारण बिना विचार किए उसके मुख से निकल गया, "भगवती! जुए के खेल मे सदा विजय।"

देवी हस पडी और बोली, "तथास्तु।" और वह लोप हो गई। पथिक की नीद खुली तो वह उस बीहड जगल के बाहर कौशाम्बी नगरी के भगवती के मन्दिर के बाहर लेटा करवटें ले रहा था।

पथिक अपने को वहा देख समझ नही सका कि क्या हो गया है। वह उस जगल के स्थान पर इस सुन्दर नगर के इस भव्य मन्दिर के बाहर चबूतरे पर कैसे आ गया है।

वह उठकर बैठ गया और देखने लगा कि यह कौन-सा स्थान है। इस समय मन्दिर का पुजारी अपने घर से पूजा-पाठ के लिए वहा आ गया। उसने चबूतरे पर किसी पथिक को लेटे देख उसके समीप आ कहा, "भक्त! उठो। पूजा-पाठ का समय हो गया है।"

जुआरी ने विस्मय में पूछ लिया, "यह कौन-सा नगर है ?"

पुजारी ने मुस्कराते हुए पूछ लिया, "तुम कहां से आए हो ?"

पथिक ने बताया नहीं कि वह कहां था। वह रात देखे मधुर स्वप्न की स्मृति पर अभी विश्वास नहीं कर रहा था। इस कारण उसने कहा, "दूर से आ रहा हूं। रात यहां देर से पहुंचा तो यह साफ-सुथरा स्थान देख विश्राम करने बैठा और सो गया। नींद खुली तो दिन चढ़ आया था और आप पहले व्यक्ति हैं, जिसके यहां दर्शन हुए हैं।"

"पथिक ! यह कौशाम्बी है। तुम कहां जा रहे हो ?"

"मैं कश्मीर-श्रीनगर का सेठ जयदेव हूं। तीर्थ-यात्रा पर निकला हुआ हूं।"

"तब ठीक है। वह देखो, मन्दिर के साथ सम्बन्ध रखनेवाली धर्मशाला है। वहां चले जाओ और स्नानादि कर भगवती के दर्शन करने हों तो आ जाना।"

जयदेव उठा और धर्मशाला में चला गया।

इस घटना के तीन वर्ष उपरान्त वह श्रीनगर में एक अन्य सेठ विश्वनाथ से जुआ खेलते हुए उसका सब कुछ जीत गया। जुआ खेलते हुए हारनेवाले की मति पर दुर्भाग्य की छाया होती है और वह अविचारशील हो सब कुछ हारता जाता है। ज्यों-ज्यों वह हारता जाता है, त्यों-त्यों उसकी आकांक्षा बढ़ती जाती है। जब विश्वनाथ सब कुछ हार गया तो जयदेव ने पूछा, "और अब तुम्हारे पास क्या है ?"

"धन-सम्पद तो है नहीं, एक भार्या है। यदि तुम अपनी भार्या के मुकाबले पर लगाओ तो उसको दांव पर लगा सकता हूं।"

जयदेव हंस पड़ा। हंसते हुए बोला, "विश्वनाथ, बस करो।"

"तो अपनी पत्नी को दांव पर लगाते हुए डरते हो ?"

"नहीं। मैं जानता हूं कि मैं जीतूंगा और तुम हारोगे। इस कारण तुम्हें यह सम्मति देता हूं। अब खेलना बन्द करो।"

"और मैं समझता हूं कि मेरी पत्नी पतिव्रता है। इस कारण उसके प्रताप से मैं जीत जाऊंगा। तुम्हारी पत्नी को जीतकर अपनी पूर्ण हारी

हुई सम्पत्ति के मोल उसे लौटा दूगा ।"

"परन्तु मैं जानता हूं कि तुम हारोगे।"

"किसलिए ? कैसे जानते हो यह ?"

"यह तब बताऊंगा, जब तुम हार जाओगे।"

"तो एक अन्तिम दांव लगा दो ।"

जयदेव मानता नही था, परन्तु विश्वनाथ आग्रह कर चुनौती देने लगा। आखिर जयदेव ने पासा फेंका और जीत गया।

विश्वनाथ मुख देखता रह गया। इसपर जयदेव ने कहा, "बन्धु ! मैंने तो तुम्हें पहले ही कहा था कि तुम हार जाओगे, परन्तु तुम नहीं माने। अब जाओ, अपनी पत्नी को ले आओ।"

विश्वनाथ लज्जित और शोकग्रस्त अपने घर को चल दिया। कुछ देर उपरान्त वह अपनी पत्नी जयमगला को लिए हुए जयदेव की बैठक मे आ गया। जयमगला की आंखें और गालें अश्रुओं से भीगी हुई थी। वह भूमि की ओर देखती हुई जयदेव के सामने ला खडी कर दी गई।

जयदेव ने मुस्कराते हुए कहा, "क्या नाम है इसका ?"

विश्वनाथ ने भर्राई आवाज मे कहा, "जयमगला।"

जयदेव ने मुस्कराते हुए भूमि की ओर देखती हुई टप-टप आसू बहाती विश्वनाथ की पत्नी जयमगला को सम्बोधन करते हुए कहा, "बहन मगला ! भगवान तुम्हारा भला करें। तुम अपने घर लौट जाओ, और भाई का आशीर्वाद है कि जब तक जीओ, सती-साध्वी बन जीओ। मैंने अपनी जीत वापस ले ली है।"

जयमगला ने आसू पोंछते हुए कहा "भैया ! मैं अब इस मूर्ख के घर नही जाऊंगी।"

"तो फिर कहा जाओगी ?"

"गगाजी मे प्रवाह लूगी।" इतना कह वह जयदेव को आशीर्वाद देती हुई कि परमात्मा उसको सौ वर्ष तक स्वस्थ और समृद्ध जीवन दे, जाने लगी तो विश्वनाथ वहां ही खड़ा-खड़ा बोला, "मगलादेवी, अब क्षमा कर दो।"

"बकवास बन्द करो ! मैं अब तुम्हारी पत्नी नही हू। तुम मुझे हार

चुके हो।" वह जयदेव के घर से निकल गंगा-घाट की ओर चल दी।

विश्वनाथ ने जयदेव से कहा, "तुमने जीतकर भी उसे स्वतन्त्र कर दिया। यह क्यों ?"

"तुम्हारी पत्नी ने ठीक कहा है कि तुम मूर्ख हो। मैंने तुम्हें कहा था कि तुम हारोगे। इसपर भी तुम्हें ज्ञान नहीं हुआ। तुमने इस देवी को दांव पर लगा दिया।"

"परन्तु तुम कैसे जानते थे कि मैं हारूंगा ?"

"बैठो, बताता हूं। मैंने वचन दिया था कि तुम्हारे इस दांव के भी हार जाने पर बताऊंगा। अतः सुनो।"

इसपर जयदेव ने भ्रमरवासिनी देवी की कथा सुना दी। कथा सुनकर विश्वनाथ के मन में लालसा हुई कि वह भी भ्रमरवासिनी देवी के मन्दिर में जाए और उसे भी वर मिल जाए तो पुनः धनी बन सकेगा। इतना विचार वह विन्ध्याचल पर्वत पर भ्रमरवासिनी देवी के मन्दिर का मार्ग पूछता हुआ भटकने लगा।

कई वर्ष भटकने और अकथनीय कठिनाइयों को पार करता हुआ वह मन्दिर में जा पहुंचा। वर्षों के भटकने से वह जीर्ण-शीर्ण शरीर और दाढ़ी-मूंछ बढ़ जाने से विकराल स्वरूप में देवी की प्रतिमा के सम्मुख पहुंच थकावट तथा भूख-प्यास से व्याकुल लेटा तो अचेत हो गया।

इस अचेतावस्था में ही उसे एक अद्वितीय सुन्दरी के दर्शन हुए। उस समय उसे स्मरण नहीं रहा था कि वह किस प्रयोजन से भटकता हुआ वहां पहुंचा था। इस समय तो उस स्त्री के अलौकिक सौन्दर्य पर मोहित हो वह उसको पत्नी के रूप में चाहने लगा। उससे भी उस स्त्री ने सहानुभूति प्रकट करते हुए पूछा, "क्या चाहते हो ? किसलिए यहां आए हो ?"

विश्वनाथ तो उस स्त्री के आकर्षण से विमूढ़ हुआ अनायास बोल उठा, "मैं देवी को पत्नी-रूप में चाहता हूं।"

"यह असम्भव है।" उस स्त्री ने कहा, "मेरे साथ तुम सहवास नहीं कर सकोगे।"

"तो देवी, मुझे अन्य कुछ नहीं चाहिए। मुझे मरने दीजिए।"

उस स्त्री ने कहा, "परन्तु इस जन्म में तुम मुझे नहीं पा सकते। मुझे

भूलोक पर जन्म लेना पड़ेगा और मेरे युवा होने तक तुम्हारी आयु विवाह-सुख भोगने के योग्य नहीं रह जाएगी।"

"देवी, मेरी यही अभिलाषा है। यदि यह पूर्ण नहीं हो सकती तो अपने शब्द वापस ले लो।"

"यह मैं नहीं करती, न ही करना चाहती हूं। अगले जन्म में मैं तुम्हारी पत्नी बनूंगी।"

इतना कह वह स्त्री अन्तर्ध्यान हो गई। विश्वनाथ को चेतना हुई तो वह एक उद्यान मे एक संगमरमर के चबूतरे पर लेटा हुआ था। उसके मन्दिर में पहुचने के समय वस्त्र फट चुके थे, उसका शरीर जीर्ण-शीर्ण हो चुका था, परन्तु अब वह अपने को रत्नजड़ित वस्त्रों और आभूषणों से अलङ्कृत, सर्वथा स्वस्थ और सतर्क तथा सबल पाता था।

वह समझा कि कदाचित् वह देवी उसे वहा भी दर्शन देगी, परन्तु दिन के उपरान्त दिन व्यतीत होने लगे और वहा उसे कोई अन्य मानव दिखाई न दिया।

जिस उद्यान में वह था, वह फल, कन्द-मूल से लदा हुआ था और उसीके आश्रय वह जीवन चला रहा था। वह उस उद्यान से निकल किसी मार्ग की खोज मे उद्यान से बाहर गया भी था, परन्तु उस सुहावने देश मे वह किसी प्राणी को न देख पुन. उद्यान में लौट आया था।

आखिर एक रात सोए हुए उसे उसी देवी के दर्शन हुए। देवी ने पूछा, "सुनाओ भक्त, किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं ?"

"देवी !" विश्वनाथ ने उत्तर दिया, "यहा कष्ट तो कुछ नही, परन्तु मेरी स्थिति सुखकारक भी नही।"

"क्या दु ख है ?"

"यहा से दूर-दूर तक भ्रमण के लिए गया था, परन्तु मुझे किसी मानव के दर्शन नही हुए। हताश हो यहां आकर रात को सो जाया करता हूं।"

वह देवी बोली, "यह मानवलोक नही है। इस कारण तुम्हें यहा मानव दिखाई नही देते। इसपर भी इस लोक मे लोग है। उनके शरीर अति सूक्ष्म होने से वे तुमको दिखाई नहीं देते और वे तुमको यहा विचरता

हुआ देख विस्मय करते हैं।"

"परन्तु देवी ! मुझे यहां किस कारण लाकर वन्दी वना रखा है ?"

वह मुस्कराकर वोली, "मर्त्यलोक में तुम शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होगे। तव मुझे अपने कथनानुसार तुमसे विवाह के लिए मर्त्यलोक में जन्म लेना पड़ता। मैं चाहती हूं कि तुम्हारा यह जन्म समाप्त ही न हो और मुझे तुमसे विवाह न करना पड़े।"

"देवी ! यह तो वर देकर वापस लेने के तुल्य होगा। यह तो वचन-भंग है।"

"यहां का यही विधान है।"

वह चुप रहा। परन्तु अगले दिन प्रातःकाल वह स्नानादि से अवकाश पा चल पड़ा। चलते-चलते वह एक नदी के किनारे पर जा पहुंचा और वहां उसने नदी में प्रवाह ले लिया। वह उस गहरी नदी में डूबकर मर गया और इस आत्महत्या के अपराध में उसका कश्मीर के महाराज युधिष्ठिर के घर द्वितीय पुत्र के रूप में जन्म हुआ। उसका नाम रणादित्य और उसके वड़े भाई का नाम नरेन्द्रादित्य था।

नरेन्द्रादित्य निःसन्तान मरा तो उसके छोटे भाई रणादित्य को राजगद्दी पर विठाया गया। रणादित्य को अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त स्मरण था और उसे स्मरण था कि उसने एक अद्वितीय सुन्दरी से विवाह करने के लिए जल-प्रवाह लिया था। अतः वह राजगद्दी पर वैठने पर भी विवाह नहीं करता था। उसे ऐसा समझ आता था कि उसके लिए देवी इस लोक में प्रकट होगी।

अन्ततः ऐसा हुआ। पड़ोस के याद्र देश के नरेश की लड़की के स्वयंवर की सूचना मिली। रणादित्य इस विचार से कि यदि वह देवी की रूप-राशि की न हुई तो स्वयंवर से लौट आएगा, स्वयंवर-स्थान पर जा पहुंचा।

उसकी प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा जव उसने याद्र की राजकुमारी को देखा और उसमें देवी के दर्शन किए। अतः वह स्वयंवर में पहुंचा और राजकुमारी ने उसे वर लिया। इससे याद्र-नरेश ने राजकुमारी का विवाह रणादित्य से कर दिया।

विवाह के उपरान्त उसने राजकुमारी से पूछा, "आप भ्रमरवासिनी

देवी हैं ?"

राजकुमारी हंस पड़ी और बोली, "मैं अपना वचन पूरा करने के लिए इस लोक में आई हूं। आप महाराज याद्र से पूछ सकते हैं कि मैं कैसे उनके घर में आई हूं।"

रणादित्य ने याद्रराज से पूछा तो याद्र-नरेश ने बताया, "यह लड़की मेरी रानी की सन्तान नहीं। मुझे यह एक सन्दूक में नदी में बहती मिली था। इसके रूप-लावण्य को देख मैंने इसकी पालना की है। युवा होने पर इसने मुझे स्वयं कहा था कि इसको स्वयंवर की स्वीकृति दी जाए। मुझे बहुत प्रसन्नता है कि इसने आपको वरा है।"

रणादित्य समझ गया कि देवी ने अपना वचन पूरा किया है, और अभी रणादित्य याद्र देश में ही था कि उसने पत्नी से सहवास की इच्छा प्रकट की।

यह अवसर पहली रात ही मिला। देवी ने शयनागार में प्रवेश करते ही यह कहा, "आप दो-चार क्षण के लिए बाहर ठहरें और मैं सोने के लिए तैयार हो जाती हूं।"

रणादित्य अति प्रसन्न था। वह रनिवास के बाहर गया और कुछ प्रतीक्षा के उपरान्त लौटा तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसकी शय्या पर देवी सर्वथा नग्न चादर में लिपटी हुई उसकी प्रतीक्षा कर रही है। वह उस देवी की संगत में रात-भर मनोविनोद करता रहा। प्रात. पुन. उस स्त्री ने कहा, "आप तनिक बाहर जाइए, जिससे मैं आपके साथ दिन-भर के विहार के लिए तैयार हो जाऊं।"

रणादित्य इसका अर्थ समझा नहीं, परन्तु वह उससे इतना सन्तुष्ट था कि वह उसका कहा मान शयनागार से बाहर चला गया और जब लौटा तो वह देवी वस्त्र पहने हुए एव शृंगारयुक्त पलंग के समीप रखी चौकी पर बैठी थी। रणादित्य ने पूछा, "तो आप स्नान कर चुकी हैं ?"

देवी ने मुस्कराते हुए कहा, "हां। आप भी स्नान कर तैयार हो जाइए। महाराज याद्र-नरेश आपसे मिलने के लिए आनेवाले हैं।"

रणादित्य विस्मय करता हुआ स्नानागार में चला गया। वह समझ नहीं सका कि इतने कम काल में वह कैसे वस्त्र-आभूषणादि से अलंकृत

और स्नानादि से निवृत्त हो सकी है। वह स्नानादि से निवृत्त हो अभी वस्त्र ही पहन रहा था कि महाराज याद्र लड़की तथा दामाद को मिलने आ गए। इस कारण रणादित्य को अपने विस्मय-निवारण का अवसर ही नहीं मिला।

परन्तु यह नित्य होने लगा। कश्मीर के राज्यप्रासाद में पहुंचने पर भी यही होता रहा। सोने से पूर्व वह पति से दो मिनट का अवकाश मांगती और प्रातः उठने पर वह पति को शयनागार से बाहर जाने के लिए कहती।

कश्मीर में रानी का नाम भ्रमरी रानी पड़ गया था। रणादित्य को अपनी पत्नी का यह नित्य का व्यवहार विस्मयजनक प्रतीत होने लगा। इस कारण वह इस सोने से पहले और पीछे के व्यवहार का कारण जानने के लिए उत्सुक हो उठा। उस दो मिनट में क्या होता है, वह यह जानने के लिए उत्सुक था।

भ्रमरी रानी को रनिवास में आए एक वर्ष से ऊपर हो चुका था कि एक दिन रणादित्य को यह देखने का अवसर मिल गया। रणादित्य को रात को शयनागार छोड़ने में कुछ देर लग गई। रणादित्य जानबूझकर धीरे-धीरे बाहर जाने का अभिनय कर रहा था। इसपर भी वह अभी द्वार से बाहर जाने ही वाला था कि एकाएक शयनागार के सब दीपक बुझ गए, ऐसे जैसे वेग की वायु से बुझ जाते हैं। रणादित्य विस्मय में द्वार में ही खड़ा रह गया।

उसे अंधेरे में कुछ ऐसा समझ आया कि उसके समीप से कोई द्वार से बाहर निकल गया है। उसे जानेवाले की वायु ही लगी थी। यह कुछ ऐसा ही था, मानो हवा का एक झोंका उसके समीप से निकल गया हो।

रणादित्य अभी विचार ही कर रहा था कि यह क्या है कि दीपक स्वतः जल उठे और उसके पलंग पर रानी अवस्त्र लेटी हुई उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। रणादित्य आया और उस देवी को पलंग पर लेटे देख और उसके अनिन्द्य सौन्दर्य पर मुग्ध हो उससे लिपटकर आलिंगन करने लगा। जो कुछ रात हुआ था, उसपर उसने पलंग पर लेटी देवी से पूछा, "ये दीपक कैसे बुझ गए थे और कैसे जल पड़े हैं?"

"महाराज ! मैं नहीं जानती।"

"और तुम्हारे वस्त्र कहां हैं ?"

"मुझे ज्ञात नहीं। मैं मां के पेट से अवस्त्र ही उत्पन्न हुई थी और वैसी ही हूं।"

"परन्तु तुम मां के पेट से उत्पन्न नहीं हुईं। तुम तो नदी में बहती हुई पाई गई थीं !"

"इसपर भी मेरा शरीर बना तो था। जहां बना था, वही मेरी मां थी। उसने नग्न ही जन्म दिया था।"

उस समय तो रणादित्य वासनाभिभूत कुछ पूछ नहीं सका, परन्तु वह इस रहस्य को जानने के लिए उत्तरोत्तर अधिक और अधिक उत्सुकता अनुभव करने लगा।

कई वर्ष व्यतीत हो गए। वह अपने को सर्वथा युवा अनुभव करता और उसे भी वैसा ही पाता, जैसा वह याद्र देश से आते समय थी।

विवाह हुए बारह वर्ष व्यतीत हो चुके थे और रणादित्य निःसन्तान था। इस समय कश्मीर राज्य और कामभोज में युद्ध छिड़ गया। रणादित्य स्वयं सेना लेकर युद्ध पर गया हुआ था। एक दिन रात को रणादित्य को रानी की याद आई तो वह कामातुर हो उठा। वह घोड़े पर सवार हो दो दिन में श्रीनगर आ पहुंचा और सीधा शयनागार में जा पहुंचा। वह सोने का समय था, परन्तु उसकी शय्या खाली पड़ी थी। वह कुछ समय तक रानी की प्रतीक्षा करता रहा। जब वह नहीं आई तो रानी के शयनागार को ताला लगा अपने आगार में जाकर सो रहा। बहुत प्रातःकाल वह उठा और विस्मय करता हुआ कि रानी कहां गई है, उसके आगार को देखने आया। आगार को अभी भी ताला लगा था। उसने आगार खोला और उसके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा जब उसने रानी को वहां वस्त्र-आभूषण और शृंगारयुक्त पलंग के समीप चौकी पर बैठे देखा। आगार का द्वार खोल रणादित्य स्तब्ध खड़ा रह गया। वह समझ नहीं सका कि वह किधर से और कैसे वहां आई है।

रणरम्भा, जो भ्रमरीदेवी के नाम से विख्यात थी, ने भी महाराज को विस्मित देखा तो हंस पड़ी और पूछने लगी, "आप कब आए हैं ?"

"रानी ! मैं तो यह पूछना चाहता हूं कि श्रीमतीजी कब, कहां से और किस मार्ग से यहां आई हैं ?"

इसपर तो रणरम्भा और भी ज़ोर से हंसने लगी। महाराज हत्प्रभ सामने खड़ा था। वह ईर्ष्या अनुभव कर रहा था। रणरम्भा ने कहा, "श्रीमान् ! बैठिए। आपको स्मरण नहीं रहा कि मैं यहां अपने वर के अनुसार बंधी हुई रह रही हूं।"

"परन्तु श्रीमतीजी ! जो कुछ आप पूर्वजन्म में थीं, मैं उसकी बात नहीं कर रहा। मैं एक रणरम्भा याद्र देश से विवाह कर लाया था। मैं उसकी ही बात पूछ रहा हूं। आप रात को कहां जाती हैं, कैसे जाती हैं और फिर कैसे आती हैं, यह पूछ रहा हूं।"

रणरम्भा ने कहा, "मैं देवलोक की लड़की हूं। कह नहीं सकती क्यों, परन्तु मैं आपको वरने का वचन दे बैठी थी। परन्तु इस मर्त्यलोक के प्राणी देवलोक की लड़की से सहवास नहीं कर सकते, इस कारण मैं अपनी एक स्थानापन्न माया का रूप यहां आपकी सेवा के लिए रख नित्य देवलोक अपने प्रियतम के पास जाती हूं।"

"तो वह केवल माया ही होती है ?"

"जी। मैं तो अभी भी यहां से जा सकती हूं। दासियों को पता भी नहीं चल सकता।"

रणादित्य देखता रह गया। रानी वहां नहीं थी और एक भ्रमरी आगार में चक्कर काट रही थी। इसपर रणादित्य ने कहा, "तो बहुत धोखा हुआ। सब भ्रम ही था।"

"संसार भ्रम ही तो है। इसपर भी आपको रस आता रहा है।"

"हां, परन्तु अब उस मिथ्या वस्तु के साथ सहवास करने में रस नहीं रहेगा।"

"इसपर भी आप मेरे जैसी सुन्दर युवती के पति तो हैं ही।"

"परन्तु यह मिथ्या सान्त्वना है।"

"नहीं, राजन ! यह मिथ्या नहीं। आपकी आयु इस समय कितनी है ?"

"इस समय पैंतीस वर्ष का हूं।"

"यदि मैं यहां रहूंगी तो आपकी आयु चार सौ वर्ष होगी।"

"क्या लाभ होगा इससे ?"

"आप इस काल मे धर्म-कर्म करने का अवसर पा जाएंगे और शीघ्र ही मोक्ष पाने के अधिकारी हो जाएंगे।"

"और तब तक देवीजी मेरे पास रहेगी क्या ?"

"हां। इसी रूप मे, जिसमें पिछले बारह वर्ष से रह रही हूं।"

इस बात ने रणादित्य के जीवन का कांटा बदला और वह प्रजा-पालन तथा धर्म-कर्म मे रुचि रखने लगा तथा दीन-दुखियो, निर्धनों और अपाहिजों की सेवा करने लगा।

अब वह पुन. उस काल्पनिक सुन्दरी का भोग नही कर सका। जब कभी भी वह उसकी शय्या के पास आता तो अनुभव करता कि वह वायु मे ही भोग-विलास कर रहा है। इससे वह शान्त हो अपने आगार मे चला जाता।

रणरम्भा ने उसे बताया, "यही वैराग्य का रूप है। ससार को कृत्रिम समझ मनुष्य इसे छोडता चला जाता है।"

२

कविवर कल्हण यह कथा महाराज जयचन्द को सुना रहा था। कल्हण का पिता चम्पक अपने पुत्र के समीप बैठा हुआ मुस्करा रहा था। महाराज जयचन्द ने पूछा—कविवर ! यह कोई इतिहास सुना रहे हो अथवा कोई गल्प ?

इसपर कल्हण ने वैसी ही गम्भीर मुद्रा मे कहा—महाराज ! यह इतिहास है, परन्तु साथ ही पुराण भी ह।

क्या अभिप्राय है इसका ? पुराण से आपका क्या तात्पर्य है ?

महाराज ! इतिहास,तो यह है कि आज से कई सौ वर्ष पूर्व यहा एक रणादित्य नाम का महाराज हुआ था। उसकी एक बहुत सुन्दर रानी थी। रानी का नाम रणरम्भा था, परन्तु वह भ्रमरीदेवी के नाम से विख्यात थी। यह इतिहास है।

यह भी इतिहास है कि रणादित्य के कोई सन्तान नहीं थी और वह चार सौ वर्ष तक जीवित रहा। चार सौ वर्ष की आयु में भी वह युवा और स्त्रियों के लिए मनमोहक बना हुआ था। परन्तु वह जो रणरम्भा के तुल्य सुन्दरी का भोग कर चुका था, उसे कोई भी स्त्री मोह नहीं सकी। उस रात के उपरान्त, जब रणरम्भा ने बताया था कि वह अपना मायावी रूप वहां छोड़ जाती है, वह उस काल्पनिक पत्नी से भोग नहीं कर सका। उसे अनुभव होता था कि वह हवा में वासना-तृप्ति कर रहा है।

यह भी इतिहास है कि वह महाराज अपना पूर्ण जीवन प्रजा के हित में व्यतीत करता रहा था और उसे किसीने मरते नहीं देखा। वह एक दिन रानी के साथ कैलाश की यात्रा पर गया और फिर नहीं लौटा।

कल्हण ने आगे कहा—महाराज ! इसपर पुराण ने इस विस्मयजनक घटना का कारण और परिणाम वर्णन किया है। रणरम्भा कौन थी, वह कैसे महाराज के रनिवास में आई, क्यों उसके सन्तान उत्पन्न नहीं हुई, यह पुराण है। कवि ने अपनी अन्तर्दृष्टि से यह देखा है और लिख दिया है।

इसपर महाराज और महामात्य भी हंसने लगे। हंसकर महाराज जयचन्द ने पूछा—भला इस घटना का परिणाम क्या हुआ ?

महाराज ! वह भी इतिहास है। आपके पास अवकाश हो तो सुना सकता हूं।

अच्छी बात। हम कल कवि के दरबार में आएंगे और रणादित्य का शेष इतिहास सुनेंगे।

अगले दिन मध्याह्न के भोजनोपरान्त महाराज जयचन्द महामात्य चम्पक के साथ कल्हण से रणादित्य की सन्तान की कथा सुनने आए तो कवि ने बताना आरम्भ कर दिया।

उसने कहा—रणादित्य और रानी रणरम्भा के कैलाश-यात्रा से लौटने की मन्त्रिगण छः मास तक प्रतीक्षा करते रहे। जब दोनों में से कोई नहीं आया तो रणादित्य के महामात्य दुर्लभवर्द्धन ने मन्त्रिमण्डल की बैठक बुलाकर कहा, "मन्त्रिगण ! महाराज रणादित्य कैलाश पर बर्फ में गल गए प्रतीत होते हैं। रानी रणरम्भा भी नहीं रहा प्रतीत होतीं। महाराज के कोई सन्तान नहीं। उनके परिवार में भी कोई युवक राजा बनने के

योग्य नहीं है। अतः हमें कश्मीर के किसी योग्य व्यक्ति को राजा बनाना चाहिए।"

मन्त्रिमण्डल ने महामात्य की सम्मति स्वीकार की तो दुर्लभवर्धन ने कह दिया, "मैं समझता हूं कि इस समय कश्मीर राज्य में मैं ही राज्य-कार्य करने के योग्य हूं।"

अर्थमन्त्री ने सुझाव दिया, "मेरी सम्मति है कि शिष्ट नागरिकों की एक समिति बुलाकर यह निर्णय उनपर छोड़ दिया जाए।"

"मैं उनको इस योग्य नहीं समझता कि वे राजा का चयन करें। मैं स्वयमेव अपने को राज्य के लिए चयन करता हूं।"

एक अन्य मन्त्री बोल उठा, "यदि हम न मानें तो क्या होगा?"

दुर्लभवर्धन ने शान्त भाव से ही कह दिया, "बन्धु! बाहर प्रांगण में जाकर देखो तो तुमको पता चल जाएगा कि क्या हो जाएगा।"

अर्थमन्त्री रमाकान्त क्रोध में उठ बाहर जाकर देखने का बहाना कर सभा-भवन के प्रांगण में जा पहुंचा। प्रांगण में दस सहस्र सैनिक अस्त्र-शस्त्र लिए वहां खड़े थे। रमाकान्त ड्योढ़ी में खड़ा हुआ तो सैनिकों ने उसे देख लिया और सबने जयघोष कर दिया, "महाराज दुर्लभवर्धन की जय हो!"

दस सहस्र कण्ठ से निकला शब्द भीतर मन्त्रिमण्डल के सभाभवन में भी पहुंचा और सबके कान खड़े हो गए।

अर्थमन्त्री का विचार था कि प्रजा दुर्लभवर्धन के पक्ष में नहीं, परन्तु जब उसने सेना को दुर्लभ की जय-जयकार करते देखा तो भीतर लौट आया और अपने स्थान पर बैठते हुए बोला, "मैं मन्त्रिमण्डल को यह सम्मति दूंगा कि महामात्य दुर्लभवर्धन को कश्मीर का नरेश घोषित कर देना चाहिए।"

वह मन्त्री भी, जिसने शिष्टमण्डल के बुलाने की बात कही थी, कहने लगा, "राज्य के तीन स्तम्भ होते हैं—एक सेना, दूसरा प्रजा और तीसरा विद्वान लोग। इन तीनों में सबसे बलवान सेना है। सेना महामात्य के पक्ष में है। इस कारण वह ही महाराज कश्मीर हैं।"

"और मैं कहता हूं," दुर्लभवर्धन ने कहा, "कि देश-भर का वैश्य समाज मेरे साथ है।"

यह भी इतिहास है कि रणादित्य के कोई सन्तान नहीं थी और वह चार सौ वर्ष तक जीवित रहा। चार सौ वर्ष की आयु में भी वह युवा और स्त्रियों के लिए मनमोहक बना हुआ था। परन्तु वह जो रणरम्भा के तुल्य सुन्दरी का भोग कर चुका था, उसे कोई भी स्त्री मोह नहीं सकी। उस रात के उपरान्त, जब रणरम्भा ने बताया था कि वह अपना मायावी रूप वहां छोड़ जाती है, वह उस काल्पनिक पत्नी से भोग नहीं कर सका। उसे अनुभव होता था कि वह हवा में वासना-तृप्ति कर रहा है।

यह भी इतिहास है कि वह महाराज अपना पूर्ण जीवन प्रजा के हित में व्यतीत करता रहा था और उसे किसीने मरते नहीं देखा। वह एक दिन रानी के साथ कैलाश की यात्रा पर गया और फिर नहीं लौटा।

कल्हण ने आगे कहा—महाराज ! इसपर पुराण ने इस विस्मयजनक घटना का कारण और परिणाम वर्णन किया है। रणरम्भा कौन थी, वह कैसे महाराज के रनिवास में आई, क्यों उसके सन्तान उत्पन्न नहीं हुई, यह पुराण है। कवि ने अपनी अन्तर्दृष्टि से यह देखा है और लिख दिया है।

इसपर महाराज और महामात्य भी हंसने लगे। हंसकर महाराज जयचन्द ने पूछा—भला इस घटना का परिणाम क्या हुआ ?

महाराज ! वह भी इतिहास है। आपके पास अवकाश हो तो सुना सकता हूं।

अच्छी बात। हम कल कवि के दरबार में आएंगे और रणादित्य का शेष इतिहास सुनेंगे।

अगले दिन मध्याह्न के भोजनोपरान्त महाराज जयचन्द महामात्य चम्पक के साथ कल्हण से रणादित्य की सन्तान की कथा सुनने आए तो कवि ने बताना आरम्भ कर दिया।

उसने कहा—रणादित्य और रानी रणरम्भा के कैलाश-यात्रा से लौटने की मन्त्रिगण छः मास तक प्रतीक्षा करते रहे। जब दोनों में से कोई नहीं आया तो रणादित्य के महामात्य दुर्लभव र्न ने मन्त्रिमण्डल की बैठक बुलाकर कहा, "मन्त्रिगण ! महाराज रणादित्य कैलाश पर बर्फ में गल गए प्रतीत होते हैं। रानी रणरम्भा भी नहीं रहा प्रतीत होतीं। महाराज के कोई सन्तान नहीं। उनके परिवार में भी कोई युवक राजा बनने के

योग्य नहीं है। अतः हमें कश्मीर के किसी योग्य व्यक्ति को राजा बनाना चाहिए।"

मन्त्रिमण्डल ने महामात्य की सम्मति स्वीकार की तो दुर्लभवर्धन ने कह दिया, "मैं समझता हूं कि इस समय कश्मीर राज्य में मैं ही राज्य-कार्य करने के योग्य हूं।"

अर्थमन्त्री ने सुझाव दिया, "मेरी सम्मति है कि शिष्ट नागरिकों की एक समिति बुलाकर यह निर्णय उनपर छोड़ दिया जाए।"

"मैं उनको इस योग्य नहीं समझता कि वे राजा का चयन करें। मैं स्वयमेव अपने को राज्य के लिए चयन करता हूं।"

एक अन्य मन्त्री बोल उठा, "यदि हम न मानें तो क्या होगा?"

दुर्लभवर्धन ने शान्त भाव में ही कह दिया, "बन्धु! बाहर प्रांगण में जाकर देखो तो तुमको पता चल जाएगा कि क्या हो जाएगा।"

अर्थमन्त्री रमाकान्त क्रोध में उठ बाहर जाकर देखने का बहाना कर सभा-भवन के प्रांगण में जा पहुंचा। प्रांगण में दस सहस्र सैनिक अस्त्र-शस्त्र लिए वहां खड़े थे। रमाकान्त ड्योढ़ी में खड़ा हुआ तो सैनिकों ने उसे देख लिया और सबने जयघोष कर दिया, "महाराज दुर्लभवर्धन की जय हो!"

दस सहस्र कण्ठ से निकला शब्द भीतर मन्त्रिमण्डल के सभाभवन में भी पहुंचा और सबके कान खड़े हो गए।

अर्थमन्त्री का विचार था कि प्रजा दुर्लभवर्धन के पक्ष में नहीं, परन्तु जब उसने सेना को दुर्लभ की जय-जयकार करते देखा तो भीतर लौट आया और अपने स्थान पर बैठते हुए बोला, "मैं मन्त्रिमण्डल को यह सम्मति दूंगा कि महामात्य दुर्लभवर्धन को कश्मीर का नरेश घोषित कर देना चाहिए।"

वह मन्त्री भी, जिसने शिष्टमण्डल के बुलाने की बात कही थी, कहने लगा, "राज्य के तीन स्तम्भ होते हैं—एक सेना, दूसरा प्रजा और तीसरा विद्वान लोग। इन तीनों में सबसे बलवान सेना है। सेना महामात्य के पक्ष में है। इस कारण वह ही महाराज कश्मीर हैं।"

"और मैं कहता हूं," दुर्लभवर्धन ने कहा, "कि देश-भर का वैश्य समाज मेरे साथ है।"

मन्त्रिमण्डल ने घोषणा कर दी, "आज से पांच दिन उपरान्त महामात्य को महाराज-पद प्राप्त होगा।"

"यह मन्त्रिमण्डल करेगा।" एक मन्त्री ने कहा।

दुर्लभवर्धन ने मुस्कराते हुए कहा, "जो मुझे राजगद्दी देते हैं, वे ही राज्याभिषेक की तिथि और विधि निश्चय करेंगे।"

सुरक्षामन्त्री वीरभद्र ने कहा, "सेना का प्रतिनिधिमण्डल और मैं आगामी बृहस्पतिवार इस काम के लिए निश्चय करते हैं।"

मन्त्रिगण देख रहे थे कि बलवान के सामने बात नहीं की जा सकती। अतः सब चुप रहे।

सुरक्षामन्त्री अब उठा और बोला, "आज से मैं महामात्य-पद ग्रहण कर रहा हूं और अर्थमन्त्री को आज्ञा देता हूं कि राज्याभिषेक की तैयारी की जाए।"

मन्त्रिमण्डल की सभा समाप्त हुई और सब मन्त्री मुख लटकाए हुए अपने-अपने घरों को चल दिए।

बृहस्पतिवार राज्यप्रासाद में राज्य के दो सौ प्रतिनिधि राज्यप्रासाद के सभा-मण्डप में एकत्रित हुए और भवन के चारों ओर सेना नग्न खड्ग लिए खड़ी थी। नागरिकों के सम्मुख दुर्लभवर्धन, एक नाग जाति के शूरवीर का राज्यारोहण किया गया। दुर्लभवर्धन ने अपने पूर्व मन्त्रियों का ही मन्त्रिमण्डल घोषित किया। इतना परिवर्तन कर दिया कि सुरक्षामन्त्री को महामात्य और सुरक्षामन्त्री के दोनों पद दिए। अर्थमन्त्री को भी दो पद दिए—अर्थमन्त्री का पद और वाणिज्यमन्त्री का पद। इससे पूर्व महामात्य स्वयं वाणिज्यमन्त्री का कार्य करता था।

इस प्रकार गोनन्द-परिवार का अन्त हुआ और कश्मीर का राज्य नाग जाति के एक चतुर घटक के हाथ में चला गया।

राज्याभिषेक के उपरान्त वीरभद्र महामात्य ने महाराज दुर्लभवर्धन को पृथक् में बिठाकर समझाया। उसने कहा, "महाराज! केवल राज्याभिषेक से कोई राजा नहीं बनता।"

"तो किस प्रकार राजा बन सकता है?"

"किसी क्षत्रिय कुलोत्पन्न लड़की से विवाह कर सन्तान उत्पन्न

करने से।"

"परन्तु महामात्य ! मुझ नाग को कोई क्षत्रिय कुल की लड़की देगा?"

"यदि आप स्वीकार करें तो मैं यत्न करूं ?"

"हां, करो।"

"पर अपनी नागपत्नी को उसके बाप के घर भेजना होगा।"

"भेज दूंगा। उसे मासिक वेतन मिल जाए तो वह मान जाएगी।"

"तो उसे राज्यप्रासाद में मत लाना। मैं यत्न करूंगा कि शीघ्र ही आपके आगारों में कोई श्रेष्ठ क्षत्रिय कन्या आ जाए।"

राज्याभिषेक के दूसरे दिन वीरभद्र अपनी हवेली के बैठकघर में बैठा एक मां-बेटी से बातचीत कर रहा था।

वीरभद्र लड़की को कह रहा था, "देखो अनग ! मैं तुम्हें कश्मीर की महारानी बनाना चाहता हूं।"

"कैसे ?"

"कल जिनका राज्याभिषेक हुआ है, उनसे तुम्हारा विवाह करके।"

"परन्तु मैं तो आपसे प्रेम करती हूं।"

"वह तुम तब भी कर सकोगी।"

"तो मैं दो पुरुषों की शय्या सजाऊंगी ?"

"क्या हानि है ! इसके प्रतिकार में राज्य भी तो पाओगी। महारानी कहलाओगी। हीरे, मोती, रत्नादि भूषणों से लद जाओगी। तुम्हारे आगे-पीछे लौंडियां खड़ी सेवा करेंगी। कभी हाथी पर सवार हो नगर में घूमने जाओगी, तो मकानों के छज्जों पर नगर-भर की स्त्रियां तुम्हारी सवारी देखा करेंगी और फिर तुम्हारी मां के लिए एक पृथक् महल बन जाएगा।"

लड़की और उसकी मां टुकर-टुकर महामात्य का मुख देखती रह गईं। महामात्य ने लड़की की मां को सम्बोधन कर कहा, "देखो, माताजी ! आप महाराज गोनन्द के परिवार से हैं और आपका राज्य पुनः आपकी सन्तान को मिल जाएगा। मैं यह बहुत बड़ा लाभ समझता हूं। इसके लिए आपको और आपकी लड़की को कुछ त्याग करना चाहिए।"

वास्तव में मां तो मन ही मन इस प्रस्ताव पर बहुत प्रसन्न थी, परन्तु

अपनी लड़की के सम्मुख विस्मय और शोक प्रकट करने का नाटक कर रही थी। अब एक उपयुक्त बहाना पा वह लड़की को समझाने लगी। उसने कहा, "अनंग ! मान जाओ। यह परिवार तथा देश और जाति के लिए त्याग करना ही होगा।"

इस प्रकार बात स्वीकार हो गई। दुर्लभवर्धन एक प्रौढ़ावस्था का तथा सामान्य रूप-राशि का व्यक्ति था। वह शूरवीर था, परन्तु राजनीति को जाननेवाला नहीं था। उसे राज्यगद्दी संभालने के लिए भी महामात्य और भूतपूर्व सुरक्षामंत्री ने ही राजी किया था।

इस प्रकार कश्मीर राज्य की भूमि और गोनन्द-परिवार की कन्या एक सामान्य बुद्धि के व्यक्ति को मिल गई। विवाह बहुत धूमधाम से हुआ। प्रजा में भी गोनन्द-परिवार को राज्य का भागी बनता देख प्रसन्नता हुई।

परन्तु यह भूल थी। सन्तान पिता पर जाती है। मां तो भूमि का काम ही करती है। वह केवल शरीर को ही बनाती है। भूमि अच्छी उर्वरा हो तो उपज अच्छी होती है, और यदि भूमि में बल हो, तो अधिक मात्रा में भी होती है, परन्तु गुण और स्वभाव तो पिता से ही सन्तान को मिलते हैं।

इसपर भी अनंगलेखा की सन्तान महामात्य वीरभद्र की थी अथवा नागजातीय दुर्लभवर्धन की, कोई जान नहीं सका। अनंगलेखा का और वीरभद्र का सम्बन्ध तो इतिहास लिखनेवाले लिखते हैं, परन्तु सन्तान दुर्लभवर्धन की ही मानते हैं।

कल्हण महाराज जयचन्द को कहने लगा—महाराज ! यहां तक तो इतिहास है। अब आगे पुराण-लेखक ने अपनी कल्पना दौड़ाई है। पुराण-लेखक जो धुआं देखकर अग्नि का अनुमान लगाने का अभ्यास रखता है, लिखता है कि सन्तान बहुत ही साधारण बुद्धि और चरित्र की थी। इससे कहा जा सकता है कि अनंगलेखा की सन्तान महामात्य वीरभद्र की थी। वह जाति का कायस्थ था। कायस्थ का पैतृक व्यवसाय राजकीय कार्यालय में सेवा-कार्य करना है। दूब में कहीं-कहीं किसी पेड़ का बीज आ पड़ने से घास में से पेड़ उगते दिखाई देते हैं। यही बात पुराण-लेखक को समझ आई है, जिससे उसे वीरभद्र की सन्तान प्रतीत हुई थी।

एकाएक उसे विचार आया कि दोनों प्रेमी मारे जाने के योग्य हैं। उसने अपना खड्ग म्यान से निकाल लिया और तलवारवाला हाथ उठा वार करने ही वाला था कि अनंगलेखा तो भयभीत हो पलंग के नीचे घुस गई और महामात्य ने कहा, "महाराज, ठहरिए !"

दुर्लभवर्धन का हाथ रुक गया। महामात्य जल्दी-जल्दी वस्त्र पहनते हुए बोला, "इस स्थान को रणभूमि मत बनाइए। मैं आपकी चुनौती स्वीकार करता हूं। चलिए, किसी एकान्त स्थान पर बात कर लेते हैं।"

"परन्तु वीरभद्र ! तुमने अधर्माचरण किया है और उसका ही तुम्हें दण्ड देने जा रहा हूं।"

"परन्तु श्रीमान् ! उस अधर्म की व्याख्या ही तो आपके समक्ष करना चाहता हूं। इतना और स्मरण कर लीजिए कि कश्मीर राज्य आपके कन्धों पर नहीं टिका हुआ। यदि उस बुद्धि, जो इतने बड़े राज्य को शान्तिपूर्वक चला रही है, की अकारण हत्या कर डालेंगे तो राज्य खण्ड-खण्ड हो जाएगा।"

"कैसे खण्ड-खण्ड हो जाएगा ?"

"यह समझाने के लिए ही तो कह रहा हूं।"

दुर्लभवर्धन को स्मरण आ गया कि वह किस प्रकार राजा बना था। इस कारण वह गम्भीर विचार में पड़ गया कि किस प्रकार इसे सुलझाए।

इस समय तक वीरभद्र वस्त्र पहन अपना खड्ग निकालकर बोला, "महाराज, यदि आप इससे बात करना चाहें तो मैं इस प्रकार भी समझाने के लिए तैयार हूं। परन्तु मैंने निवेदन किया है कि इस स्थान को आप रणभूमि मत बनाइए। आइए, कार्यालय में चल, बात कर वस्तुस्थिति समझ सकेंगे।"

३

अनंगलेखा को समझ आया कि उसकी हत्या किए बिना महाराज को सन्तोष नहीं होगा। इस कारण वह महाराज और महामात्य के उसके शयनागार से बाहर जाते ही पलंग के नीचे से निकली और वस्त्र पहन,

राज्यप्रासाद से निकल, सीधी मा के पास जा पहुंची।

जब अनंगलेखा ने घटना का वृत्तान्त बताया तो मां ने अपना सब धन बटोर लिया। अब वह एक निर्धन विधवा नही थी। वह एक धनी-मानी महारानी-कश्मीर की माता थी। मां-बेटी ने, जो कुछ जल्दी-जल्दी बटोर सकती थी, बटोरा और अपना रथ मगवाकर कश्मीर देश की सीमा पार करने के लिए भाग खड़ी हुईं।

उनको समझ आया कि कामभोज समीपतम विदेश है और वे उसी ओर जा रही थी।

श्रीनगर से भागी तो सायंकाल तक वराहमूल नगर तक ही पहुंच सकी थी। वहां से एक पंथागार में ठहर गई। रात वहां गुमनाम विश्राम करने का विचार रखती थी; परन्तु अभी रात का एक प्रहर ही व्यतीत हुआ था कि एक दर्जन सैनिकों ने उन्हे आ घेरा और दोनों स्त्रियों को बन्दी बना सैनिक श्रीनगर को लौट आए। अभी दिन नही निकला था कि मां-बेटी राज्यप्रासाद में पहुंचा दी गई।

दुर्लभवर्धन को जब सूचना मिली कि महारानीजी राज्यप्रासाद में आ गई हैं, तो वह अपने शयनागार से निकल महारानी के शयनागार में पहुंच गया।

दोनो स्त्रिया निश्चित मृत्यु को समीप समझ वराह [illegible] याचना कर रही थी। तब महाराज ने वहां पहुच रानी को [illegible] कहा, "देखो अनग ! मुझमे और वीरभद्र मे एक [illegible] है तुम यहा ही रहोगी। इसपर भी तुम भार्या वीरभद्र की [illegible]

"तुम जब चाहो, उसकी पत्नी से मिलने का बहाना [illegible] हवेली मे जा सकोगी। वहा तुम उससे जैसा व्यवहार [illegible] सकोगी; परन्तु वह यदि अब इस शयनागार मे [illegible] नही रह सकती।"

अनगलेखा तथा उसकी मां तो यह [illegible] कर उनके शवों को कुत्तो के आगे [illegible] सुन मा-बेटी दोनो की जान मे जान आ गई

अनंगलेखा की मां तो सीधी [illegible]

रहने लगी। महारानी अनंगलेखा ने वीरभद्र से अपना सम्बन्धविच्छेद कर लिया और वीरभद्र ने भी पुनः यत्न नहीं किया कि अनंगलेखा से अपना सम्बन्ध पुनर्जीवित करे।

अनंगलेखा अब महाराज को प्रेरणा देने लगी कि भगवान वराह का एक विशाल मन्दिर बनवाएं और वराह भगवान की पूजा किया करें। वह समझती थी कि उनकी ही कृपा से वह बच सकी है।

महामात्य वीरभद्र ने वचन दिया था कि वह स्वयं अनंगलेखा को अपने निवास-स्थान पर नहीं बुलाएगा और न ही वह उससे मिलने राज्यप्रासाद में जाएगा। इसपर भी वह अनंगलेखा को भूल नहीं सका।

इस घटना के कुछ ही उपरान्त दुर्लभवर्धन बीमार रहने लगा। भिषगाचार्यों का यह निश्चय था कि महाराज को राजयक्ष्मा रोग है और यक्ष्मा रोग की चिकित्सा होने लगी।

दुर्लभवर्धन का बड़ा लड़का दुर्लभक अभी दस वर्ष का ही था कि उसके पिता का देहान्त हो गया। दुर्लभक का राज्याभिषेक ग्यारह वर्ष की आयु में ही कर दिया गया और अनंगलेखा उसकी संरक्षिका, वीरभद्र की सहायता से राज्य चलाने लगी।

दुर्लभक एक बुद्धिमान, परन्तु दुर्बलात्मा शासक सिद्ध हुआ और महामात्य अपनी बुद्धि से और सैन्य-बल के आधार पर राज्य चलाता रहा।

दुर्लभक अभी पन्द्रह वर्ष की आयु का ही था कि वीरभद्र की किसीने रात के समय उसके शयनागार में ही हत्या कर दी।

अब अनंगलेखा की मां की राज्य में चलने लगी। वीरभद्र की मृत्यु के उपरान्त दुर्लभक ने स्वयं सुरक्षामंत्री और सेनाध्यक्ष बनना उचित समझा।

कल्हण ने महाराज जयचन्द को कथा सुनाते हुए कहा—महाराज, कश्मीर राज्य का चलन देवलोक की रणरम्भा, जो भ्रमरीदेवी के नाम से इतिहास में विख्यात है, से आरम्भ हुआ है। इसे आज तीन सौ वर्ष हो चुके हैं और तीन सौ वर्ष में यह राज्य एक चक्रवर्ती राज्य के पद से गिरकर एक निर्धन पड़ोसी राज्यों की दया के आश्रय चल रहा है।

कोई किसीपर दया नहीं करता। राज्यों में सब अपना-अपना हित देखते हैं। परमात्मा का धन्यवाद है कि हमारा देश पर्वतबाहुल्य होने से

वाहरी आक्रमणो से वचा हुआ है।

इस राजनीतिक प्रभुता के साथ हमारे देश की सांस्कृतिक महिमा भी थी। यह भी अव विलुप्त हो गई है। गोनन्द द्वितीय के काल में और महाराज मेघवाहन के काल मे देश-देशान्तर के लोग श्रीनगर और मटन में शिक्षा-ग्रहण करने आते थे। सहस्रों की सख्या में विदेशो के विद्यार्थी हमारे देश में शिक्षा-ग्रहण कर कृतकृत्य होते थे। कभी तक्षशिला और मटन मे वड़े-वड़े विश्वविद्यालय थे और अव हमारे देश मे नव्वे प्रतिशत लोग निरक्षर है। यहा के पण्डित नाम के ही पण्डित रह गए है।

महाराज ! कल्हण सुना रहा था—दुर्लभक जव राजगद्दी पर वैठा तो वह ग्यारह वर्ष का था। वह केवल लिखना-पढ़ना जानता था और उसके राज्यगद्दी पर वैठते ही [दुर्लभक की मां ने एक पण्डित नीलकण्ठ, महाराज को पढाने के लिए लगा दिया।

एक दिन पण्डित नीलकण्ठ ने कहा, "महाराज, नगर मे लोग कुछ ऐसी चर्चा करते हैं जो राज्य के लिए अत्यन्त अपमानजनक है।"

"क्या कहते है ?" दुर्लभक ने पूछा।

"मैं मुख से कह नही सकता। मेरा कहना राज्यद्रोह माना जाएगा।"

"गुरुदेव ! आप मेरे गुरु हैं ! मैं आपको अपने पिता-तुल्य मानता हूं। इस कारण आपके कहने पर मैं नाराज़ नही हो सकता। आप जो कुछ भी कहेंगे अथवा करेंगे, वह मेरे हित मे ही होगा।"

नीलकण्ठ ने झिझकते हुए कहा, "महाराज ! आप अपना मुख दर्पण मे देखकर उसकी तुलना महामात्य की रूपरेखा से कर देखे।"

"क्या मतलव ? गुरुजी, स्पष्ट कहिए।"

"महाराज, नगर में लोग कहते है कि आप अपने पिता के पुत्र नही, वरन्‌ महामात्य वीरभद्र के है।"

दुर्लभक का नाम उस समय तक प्रतापादित्य पड चुका था। वह नित्य राज्य-कार्यालय में जाता था। अतः उस दिन वह अपनी जेव मे एक दर्पण लेकर वहा पहुचा और अपने स्थान पर वैठा हुआ अपना मुख दर्पण मे देख कुछ व्यापारियों से वातचीत करते हुए वीरभद्र की ओर देखने लगा। ज्यों-ज्यो वह दोनों स्वरूपो की तुलना करता था, एक दर्पण में अपना और

दूसरा वीरभद्र का, तो उसके मुख का रंग काला पड़ता जाता था।

वीरभद्र जब लोगों से मिलकर अवकाश पा गया तो वह महाराज को कुछ बताने के लिए उसके पास आया, परन्तु प्रतापादित्य के विवर्ण हुए मुख को देख विस्मय में पूछने लगा, "महाराज ! कुछ चिन्तित प्रतीत होते हैं।"

"हां, महामात्य !" प्रतापादित्य ने कहा।

"परन्तु क्यों ?"

प्रतापादित्य ने जेब से दर्पण निकाल महामात्य के हाथ में देकर कहा, "महामात्य ! इसमें अपना मुख देखो और मेरे मुख की आकृति से तुलना करो तो तुम्हें मेरी चिन्ता का कारण पता चल जाएगा।"

वीरभद्र ने मुस्कराते हुए कहा, "महाराज ! मैं तो नित्य देखता हूं और तुलना करता हूं; परन्तु इसका अर्थ आप क्या समझे हैं ?"

"मैं कुछ ऐसा समझा हूं जो राजमाता के लिए शोभायुक्त प्रतीत नहीं होता।"

"मैं समझता हूं कि इस विषय में चिन्ता करने से पहले आप राजमाताजी से ही इस विषय पर बात कर लीजिए।"

प्रतापादित्य ने दर्पण अपनी जेब में रखा और चुप कर रहा। उस सायंकाल जब वह राज्यप्रासाद में पहुंचा तो उसकी मां अनंगलेखा अपनी कुछ सखियों से बातचीत कर रही थी।

प्रतापादित्य को अपनी मां के सती-साध्वी होने पर सन्देह हो रहा था। इस कारण वह अपने आगार में व्याकुलता से मां के अवकाश पाने की प्रतीक्षा करने लगा।

मां दीपक जलने पर आई और महाराज को सायंकाल का अल्पाहार लिए बिना बैठे देख पूछा, "बेटा ! आज अल्पाहार नहीं किया ? सोमावार ठण्डा हो गया है और मिठाई सर्दी के कारण करड़ी हो रही है।"

"माताजी !" प्रतापादित्य ने कहा, "मैं एक बात आपसे पूछना चाहता हूं।"

अनंगलेखा ने पुत्र को क्रुद्ध देख चिन्ता व्यक्त करते हुए पूछा, "हां, पूछो।"

"मां ! वीरभद्र से मेरा क्या सम्बन्ध है ?"

"क्यों ? किसलिए पूछ रहे हो ?"

"मा ! मेरे मुख की आकृति उससे बहुत मिलती है। मैं जानना चाहता हूं कि यह क्यों है।"

मा के मन में एक बार तो यह विचार आया, कि इसमें कारण से अनभिज्ञता प्रकट कर दे, परन्तु फिर विचार कर कि सत्य बात बता देगी तो भविष्य में लुकाव-छुपाव की आवश्यकता न रहेगी और वह समझती थी कि पुत्र को अपनी विवशता समझा सकेगी। इस कारण उसने कहा, "बेटा, तुम क्या समझे हो ?"

"मा, मेरे समझने की बात नहीं। यह प्रजा के समझने की बात है।"

मा ने अपने यौवनकाल की पूर्ण कथा बता दी और कह दिया, "मैं अपने पुत्र को कश्मीर-नरेश बनने के प्रलोभन का संवरण नहीं कर सकी। मैं वीरभद्र से प्रेम करती हुई महाराज दुर्लभवर्धन से विवाह स्वीकार कर बैठी और तुम उत्पन्न हो गए।"

"तो यह रहस्य है कि वीरभद्र मेरा पिता है ?"

"देखो प्रताप ! तुम मेरे पुत्र हो और महाराज-कश्मीर की मैं रानी थी। इस कारण तुम यहां के राजा हो। शेष सब गौण है।"

"परन्तु तुम्हें महाराज से विवाह स्वीकार नहीं करना चाहिए था।"

"तो तुम कश्मीर-नरेश कैसे बनते ?"

"परन्तु जब तक वीरभद्र इस संसार में है और मेरी आकृति की उससे प्रजा तुलना करती है, तब तक मेरे और मेरी मा के विषय में अपमान-जनक चर्चा चलती रहेगी।"

"तो फिर क्या किया जाए ? यह बात मैं भी तो सहन करती [redacted]।"

प्रतापादित्य चुप रहा और मन ही मन इस विडम्बना पर विचार करता रहा। अगले दिन जब नीलकण्ठ उसे पढ़ाने आया तो प्रतापादित्य उससे कहने लगा, "गुरुदेव ! मैंने दर्पण में अपना मुख देखा है और उसकी तुलना वीरभद्र की रूप-रेखा से की है। मैं इसका अर्थ समझ मा से इसका कारण पूछने गया था और उसने अपनी विवशता बताई है।"

प्रतापादित्य ने मां की पूर्ण कहानी बताकर पूछा, "मुझे इस स्थिति में

क्या करना चाहिए ?"

"देखो प्रताप !" नीलकण्ठ ने कहा, "मैं कुछ ऐसी वात की ही आशा करता था। जव तक तुम दोनों साथ-साथ राज्य में कार्य करते दिखाई दोगे, लोग इसी प्रकार सन्देह करते रहेंगे।"

"तो क्या करना चाहिए ?"

"उपाय तो सुगम ही है। या तो तुम श्रीनगर से कहीं अन्यत्र चले जाओ, अन्यथा वीरभद्र को कहीं भेज दो।"

"राज्य के महामात्य को कहां और कैसे भेज सकता हूं ?"

"प्रताप ! तुम ठीक कहते हो। परन्तु एक उपाय है। वह···।" नीलकण्ठ ने मुख प्रतापादित्य के कान के समीप कर कह दिया।

"पर मैं तो जानता नहीं कि यह कैसे करूं ?"

"तुम कुछ रुपया मुझे दो तो मैं प्रवन्ध कर देता हूं।"

"कितना रुपया चाहते हो ?"

"दस सहस्र। दो सहस्र अग्रिम और शेप आठ सहस्र काम हो जाने के पीछे।"

प्रतापादित्य ने विचार किया और कह दिया, "ठीक है। दो सहस्र आपको कल मिल जाएगा और शेप कार्य सम्पन्न होने के उपरान्त मिल जाएगा।"

इसके तीन महीने के वाद एक दिन प्रतापादित्य सोकर उठा तो मां को अपने पलंग के समीप खड़ा देख पूछने लगा, "मां ! क्या वात है ?"

"समाचार है कि वीरभद्र की किसीने हत्या कर दी है।"

"सत्य ! मां, हत्यारा···?"

"कोई पकड़ा नहीं गया। उसकी लड़की प्रातःकाल उसके लिए कावा लेकर गई तो उसका शव रक्त में लथपथ पड़ा मिला।"

"और तुम्हें वहुत दुःख हुआ है ?"

"कह नहीं सकती। एक वात अनुभव हुई है। वह यह कि मेरे सिर पर भारी वोझ-सा प्रतीत होता था। वीरभद्र ने महाराज दुर्लभवर्धन की हत्या की थी। यह मेरे ज्ञान में थी और मैं उस वोझ के नीचे दवती जा रही थी। अव उस वोझ से हलकी हो गई हूं। जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल

पाता है।"

"परन्तु पिताजी का देहान्त तो राजयक्ष्मा रोग से हुआ था ?"

"नही। उनको धीरे-धीरे मन्द गति से कार्य करनेवाला विष दिया गया था।"

"तब तो मा, ठीक ही हुआ है।"

"परन्तु तुम्हें राज्य की ओर से इसका शोक मनाना चाहिए।"

"और हत्यारे को पकड़ना चाहिए। यही न ?"

"हा।"

प्रतापादित्य चुप रहा। परन्तु वह तो जानता था कि किसने हत्या की है। राज्य-भर मे महामात्य की हत्या पर शोक मनाया गया, परन्तु पता नही चला कि किसने यह हत्या की थी।

शोक के दिनो मे ही नीलकण्ठ आया और बोला, "महाराज! आपकी सेवा करनेवाला शेष आठ हजार रजत मागता है।"

प्रतापादित्य ने यह धन तो कोष से पहले ही निकलवाकर रखा हुआ था। चार सौ स्वर्ण-मुद्रा एक थैली मे गुरुजी को देते हुए उसने पूछा, "गुरुजी! यह कार्य किसने किया है ?"

"पूछकर क्या करोगे ? उसे दण्ड तो देना नही।"

"मैं उसे पुरस्कार देना चाहता हू।"

"वह उसे इस धन को प्राप्त कर मिल जाएगा।"

"राज्य के गुप्तचर उसका पता पाने का यत्न कर रहे है।"

"परन्तु वे उसे पा नही सकेंगे।"

"कारण ?"

"कारण यह कि हत्यारे का रहस्य उसके अतिरिक्त अन्य कोई नही जानता।"

इसका अर्थ समझने के लिए प्रतापादित्य गुरु का मुख देखने लगा। एकाएक प्रतापादित्य के मन मे प्रकाश होने लगा। वह समझने लगा कि हत्यारे के अतिरिक्त हत्यारे को कोई नही जानता का अर्थ स्पष्ट है कि हत्या पण्डित नीलकण्ठ ने ही की है।

इस विचार के आते ही प्रतापादित्य ने पूछा, "तो महाराज! यह

हत्या आपने की है ?"

"नहीं, महाराज ! मैंने नहीं की। परन्तु मेरे भीतर एक सजग, सतर्क और कर्मशील आत्मा है। यह उसका काम है। मैं कश्मीर-नरेश को उसके जन्म पर सन्देह उत्पन्न करनेवाले का निर्मूल करना चाहता था। यह अब हो जाएगा।"

प्रतापादित्य ने नीलकण्ठ को महामात्य-पद पर नियुक्त कर दिया। उसका विचार था कि यह शान्त प्रकृति का व्यक्ति मन्त्री-पद पा जाएगा तो वहुत लाभदायक सिद्ध होगा। अतः नीलकण्ठ को न्याय और शान्ति-व्यवस्था का कार्य सौंपा गया और वह करने लगा।

कुछ समय पाकर जो वदनामी प्रतापादित्य की मां के विपय में फैली थी, वह धीरे-धीरे लोग भूलते चले गए। वीरभद्र के जीवनकाल में वह नित्य स्मरण होती रहती थी। राज्य-कार्यालय में और देश में भी जब दोनों कहीं इकट्ठे दिखाई दे जाते, तो लोग प्रतापादित्य की जन्म-सम्बन्धी किंवदन्तियां स्मरण करने लगते थे।

४

प्रतापादित्य पर भी यौवन का आवेश हो रहा था और उसके लिए एक मन्त्री रमाकान्त की लड़की का चयन किया गया। वह मन्त्री की लड़की और धनी-मानी तथा शिक्षित, सभ्य परिवार की घटक होने के नाते महारानी-पद के लिए उपयुक्त समझी गई। इसपर भी वह सामान्य रूप-रेखा की लड़की प्रतापादित्य पर अपना मोह डाल नहीं सकी।

पहली ही रात दोनों में शारीरिक सौन्दर्य पर वार्तालाप हो गया। शयनागार में प्रतापादित्य ने इच्छा प्रकट की कि वह उसके पूर्ण शरीर के दर्शन करना चाहता है। रानी पद्मावती विदुषी लड़की थी। तर्क-वितर्क करना भली भांति जानती थी। उसने कहा, "महाराज ! वस, इतना ही ? क्या इसीलिए मुझसे विवाह किया है ? शरीर तो अति तुच्छ वस्तु है। इसमें इससे कहीं अधिक श्रेष्ठ और महान वस्तुएं विद्यमान हैं।"

प्रतापादित्य इससे हतोत्साह नहीं हुआ। वह वोला, "महारानीजी,

पग-पग कर ही तो आपका सब कुछ देखूगा। शरीर तो प्रथम गुण है जो एक स्त्री के गुणों मे माना जाता है।"

"ठीक है। आप इसका अनावरण कर सकते है। मुझे स्वयं इसके दर्शन कराने में लज्जा आती है।"

"किसलिए ?"

"इस कारण कि मैं इसको कुछ अधिक महत्त्व नही देती।"

"तो श्रीमतीजी किसको महत्त्व देती हैं ?"

"वह एक दिन मे अथवा एक-आध घडी मे दिखाया नही जा सकता। इसपर भी उसके अनावरण का आरम्भ मैंने कर दिया है।"

प्रतापादित्य तो पद्मावती की बात समझ नही सका। इस कारण उसने पत्नी के कथनानुसार उसको अवस्त्र करना आरम्भ कर दिया। पद्मावती ने विरोध नही किया। प्रतापादित्य ने उसे सिर से पाव तक नग्न कर सामने खड़ा कर निरीक्षण आरम्भ कर दिया। एकाएक वह पुनः उसके समीप आया और उसके केश खोल डाले। वे कन्धे से कुछ ही नीचे जाते थे।

अकस्मात् उसके मुख से निकल गया, "यह तो कुछ नही।"

"क्या कुछ नही, महाराज !"

"बहुत छोटे-छोटे हैं।"

"परन्तु यह तो शरीर की मैल है। शरीर में बहुत कम मैल होने से बाहर भी कम ही निकल रही है।"

"तो शरीर मे और क्या है ?"

"वह मैं अपने मुह मियां मिट्ठू नही बनना चाहती। उसका प्रदर्शन मैं कर रही हूं और समय पाकर महाराज अपने मुख से स्वीकार करेंगे तो मुझे प्रसन्नता और सन्तोष होगा।"

इसपर भी एक नग्न स्त्री को सम्मुख देख प्रतापादित्य उसे छोड़ नहीं सका और अपनी शिक्षा तथा मानसिक प्रवृत्ति के अनुसार उसे गोद मे उठा पलग पर ले गया।

प्रवृत्ति प्रबल सिद्ध हुई और शरीर की न्यूनता रानी के अन्य सद्गुणों में विलीन होने लगी। दिन मे जब-जब भी दोनो मिलते तो इतिहास,

पुराण, साहित्य और अन्य अनेकानेक विषयों पर चर्चा होने लगती। प्रतापादित्य समझ गया था कि उसे महारानी के रूप में एक सुघड़ बातें करनेवाली स्त्री प्राप्त हुई है।

जब भी वे एकान्त में मिलते तो पद्मावती कुछ न कुछ ऐसी बात महाराज के सामने कर देती जिसके परिणामस्वरूप वह उसकी बातों में रस लेने लग जाता और वह शारीरिक सौन्दर्य की बात भूल जाता। इसका परिणाम यह था कि वह उसको पसन्द करने लगा था। उसके शरीर के उपयोग से अधिक वह उसके मानसिक विकास की सराहना करने लगता था।

एक दिन राज्य-कार्यालय से प्रतापादित्य थका हुआ आया था और मुख से कुछ उत्साहहीन दिखाई देता था। पद्मावती ने देखा और उसको पंखा करते हुए पूछ लिया, "आज तो श्रीमान् किसी प्रकार की चक्की पीसते हुए आए प्रतीत होते हैं।"

प्रतापादित्य को ज्येष्ठ मास की उष्णता में पंखा करना सुखप्रद अनुभव हुआ था। इसपर भी उसने कह दिया, "नीला कहां है ?"

नीला दाई थी जो महाराज और महारानी की निजी सेविका थी। पद्मावती ने कहा, "वह आपके लिए दूध ला रही है। इस बीच में मैं ही यह तुच्छ सेवा कर सकती हूं।"

"हम विस्मय करते हैं कि तुम इस देश में स्त्रियों में सर्वोच्च पद पर होते हुए भी इस प्रकार के छोटे-छोटे काम करने लगती हो। यदि इस समय मां भी होती तो वह दासी को आवाज़ दे बुला लेती।"

"महाराज ! वह मां हैं। वह जो कुछ करें, सब ठीक ही है। परन्तु मैं पत्नी हूं। मां पुत्र को पंखा करने के लिए नहीं बनी, परन्तु पत्नी तो पति की प्रत्येक सेवा के लिए नियुक्त है।"

"किसने नियुक्त किया है ?"

"ईश्वर की कृपा से आपने।"

"परन्तु मैं तो तुम्हें रात के कार्य के लिए ही यहां लाया हूं।"

"वह तो फोकट में है। जैसे भोजन शरीर की पुष्टि के लिए होता है, परन्तु उसका रस फोकट में ही जिह्वा लेने लगती है। स्वाद भोजन में

मुख्य गुण नही। उसका मुख्य गुण तो शरीर को पुष्ट करना है।"

"हम उसे ही मुख्य गुण मानते हैं। इसी कारण तो पीताम्बर पाचक को निकाला था। उसका बना भोजन स्वादिष्ट नही होता।"

"तो ऐसा करिए, उसमें स्वादिष्ट अंश को ही आप दिन-रात लिया करिए। उसमे जो अन्य काम का पदार्थ है, उसे निकाल उसके स्थान पर चोकर भर दिया करें तो देखिए कि आप दुर्बल होने लगेंगे।"

प्रतापादित्य महारानी की उक्ति पर विचार करने लगा था, परन्तु पद्मावती कहती गई। उसने कहा, "यही बात हमारे सहवास की है। उसमे जो रस आता है, वह भोजन में नमक, मिर्च, मसाले से ही तुलना रखता है।"

"और इसका वास्तविक प्रयोजन क्या है ?" प्रतापादित्य ने पूछ लिया।

"वह मैं आपको आज से सात मास उपरान्त दिखाने का यत्न करूंगी।"

"और अभी क्यो नही ?"

"वह अभी पेट के भीतर निर्मित हो रहा है। अभी परिपक्व नही हुआ। तब तक इसके परिपक्व होने की प्रतीक्षा कर रही हूं।"

प्रतापादित्य इस बात का अर्थ समझ रहा था। इस समय दासी नीला एक गिलास में दूध ले आई। प्रतापादित्य ने कहा, "नीला, महारानीजी थक जाएगी। तुम पखा लेकर तनिक हवा करो।"

पद्मावती ने कह दिया, "नीला, पहले तुम जाओ और महाराज की शय्या ठीक कर दो। यह आज एक घण्टा-भर इसी समय विश्राम करेंगे।"

नीला गई तो पद्मावती ने कहा, "मुझे इस बात का ज्ञान आज ही हुआ है कि आप एक बालक अथवा बालिका के पिता बनने वाले हैं। जब से यह ज्ञान हुआ है, मैं अपने मे एक विशेष प्रकार की तुष्टि का अनुभव करने लगी हू।"

"यह तुष्टि इस समाचार से हुई है कि तुम मा बन रही हो अथवा किसी अन्य प्रकार से भी हुई है ?"

"महाराज ! मैं कुछ दिनों से यह अनुभव कर रही थी कि दिनभर

पलंग पर लेटी ही रहूं। जब भी अवकाश मिलता था, मेरी यही इच्छा होने लगती थी। आज आपकी माताजी आई थीं और मुझे मध्याह्न के भोजनोपरान्त पलंग पर लेटी देख पूछने लगीं—'बेटी, दिन के समय किसलिए लेट रही हो? स्वस्थ तो हो?

"मैंने बताया—'माताजी, कष्ट कुछ भी नहीं। इसपर भी चित्त करता है कि लेटी ही रहूं और कल्पना के घोड़े दौड़ाती रहूं।'

"इसपर वह कुछ विचारकर बोलीं—"तो ठीक है, किसी प्रकार का परिश्रम का काम मत किया करो।'

"मैंने पूछा—'किसलिए?' तो वह बोलीं—'मेरा अनुमान है कि तुम एक राजकुमार की मां बननेवाली हो।' इस समाचार से मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि जिसके लिए हम पिछले छः मास से यत्नशील थे, वह सम्पन्न होता प्रतीत होता है। इसपर माताजी ने मेरे पेट को नंगा कर निरीक्षण किया और वह कह गई हैं कि अब रात को पति की संगत कम कर दो, क्योंकि एक महान कार्य मेरे पेट में आरम्भ हो गया है।"

"इसमें महानता क्या है? संसार की सब स्त्रियां यह करती हैं। कुंजरे-कबाड़ियों की स्त्रियां भी बच्चे उत्पन्न करती हैं।"

"यह तो ठीक है, महाराज! परन्तु यह कार्य कोई पुरुष नहीं कर सकता। और फिर कुंजरे-कबाड़ियों के घर राजकुमार उत्पन्न नहीं होते। यह तो श्रीमान् की पत्नी ही कर सकेगी।"

प्रतापादित्य प्रसन्न तो था कि मां की अभिलाषा पूर्ण हो रही है, परन्तु वह विस्मय कर रहा था कि पत्नी के रस-स्वादन को वह छोड़ सकेगा क्या?

उसी रात भोजन के समय अनंगलेखा ने पुत्र को कहा, "प्रताप! तुम्हें अब पद्मा के शयनागार में नहीं सोना चाहिए।"

"किसलिए मां?"

"वह बेचारी दो-दो काम नहीं कर सकेगी। एक समय में एक काम ही किसीसे लेना चाहिए। वह तुम्हारा एक परम हित करने जा रही है।"

परन्तु इसका परिणाम भिन्न हुआ। राजाओं के पास साधन होने से साधनों का प्रथम प्रयोग स्त्रियों को प्राप्त करना होता था।

इसपर भी अतंगलेखा ने एक बात की थी। पद्मावती की सबकी सब सेविकाएं शरीर से कुरूप एकत्रित कर रखी थीं। इस कारण प्रतापादित्य जब अपनी विवाहिता से पृथक् हुआ तो रानी के प्रासाद से बाहर देखने लगा।

एक बात प्रतापादित्य को अनुभव हुई। वह यह कि जैसी भी उसकी रानी है, वह कइयों से अधिक रसमयी है। जो कुछ अभाव वह सामान्य शरीर के कारण पद्मावती में अनुभव करता था, वह मात्रा से अधिक उसके मानसिक विकास में पाता था।

यह वस्तु वह कई अन्य स्त्रियों में, जो उसे अपनी खोज में मिली थीं, नहीं पाता था। इसपर भी अपने गुरु नीलकण्ठ की सहायता से वह अपनी शारीरिक वासनारूपी तृष्णा मिटाता रहता था।

एक दिन नीलकण्ठ ने उत्तरी पांचाल के रोहित निवासी एक व्यापारी की भेंट महाराज प्रतापादित्य से कराई। व्यापारी का नाम नोण था।

"महाराज !" नीलकण्ठ ने कहा, "यह नोण नाम का एक व्यापारी है। पिछले तीन मास में इस अकेले ने श्रीनगर की मण्डी से बीस करोड़ स्वर्ण का माल क्रय-विक्रय किया है। इस बीस करोड़ पर राज्य को कर तीन करोड़ स्वर्ण मिला है। इस कारण मैं इसे आपसे परिचय कराने लाया हूं।"

प्रतापादित्य राज्यप्रासाद के बैठकघर में बैठे हुए परिचय कर रहा था। उसने देखा कि एक सामान्य रूप-राशि का व्यक्ति इतना धनवान और व्यापार में कार्यकुशल कैसे हो गया !

प्रतापादित्य ने पूछा, "सेठजी ! आपकी कितनी सम्पत्ति है ?"

"महाराज ! इस देश में तो एक पैसे की भी नहीं है।"

"हम यहां के विषय में नहीं पूछ रहे। मैं तो आपकी प्रतिभा का रहस्य जानना चाहता हूं।"

"महाराज !" नोण ने कहा, "पूर्ण भारत देश में मेरी पचास से ऊपर कोठियां हैं। सब बड़े-बड़े नगरों में मेरा माल बेचने तथा खरीदने के केन्द्रों को मैं कोठियां कहता हूं। लगभग दस लाख रुपये का व्यापार प्रति कोठी में वर्ष-भर में हो जाता है। इस प्रकार एक वर्ष में पांच करोड़ स्वर्ण का

लेन-देन करता हूं और सब प्रकार के व्यय निकालकर पांच प्रतिशत का लाभ मुझे हो रहा है; अर्थात् प्रति वर्ष मुझे पच्चीस से तीस लाख स्वर्ण का लाभ होता है।

" मैं भारत-भर में घूमा हूं और जिस-जिस राजधानी में पहुंचा हूं, मैं वहां के श्रीमान् के आतिथ्य का अभिलाषी रहा हूं। प्रायः नरेश मेरे घर पर चरण रख मुझे कृतकृत्य करते रहे हैं।

" मैं श्रीमान्‌जी की सेवा में भी इसी निमित्त उपस्थित हुआ हूं। मैं अभी आपके इस प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण देश में कुछ मास तक रहने का विचार रखता हूं। इस कारण उस काल में एक दिन, रात को इस सेवक का आतिथ्य स्वीकार किए जाने की याचना कर रहा हूं। "

प्रतापादित्य ने महामात्य नीलकण्ठ की ओर देखा तो उसने कह दिया, "महाराज ! इसमें कुछ भी हानि नहीं है। आपके शरीर की रक्षा का पूर्ण प्रवन्ध कर दिया जाएगा।"

५

इस प्रकार प्रतापादित्य सेठ नोणजी महाराज के निवास-स्थान पर एक सायंकाल पहुंच गए। नोण श्रीनगर में एक परदेशी था। वह वहां केवल तीन मास के लिए आया था। इसपर भी उसके निवास-स्थान को देखकर तथा उसमें सुख-सुविधा के साधन और सामान को देखकर प्रतापादित्य चकित रह गया। राज्यप्रासाद में भी वे वस्तुएं उपलव्ध नहीं थीं, जो सेठ नोण के घर पर थीं।

सेठ के निवास-स्थान में पहुंचते ही प्रतापादित्य यह अनुभव करने लगा था कि वह भूतल से उठाकर स्वर्ग में पहुंचा दिया गया है।

मकान में उद्यान, उद्यानों में पुष्कर और झरने, उसमें भांति-भांति के फलों और पुष्पों के पेड़ तथा छोटी-छोटी पुष्करणियों में रंग-बिरंगी छोटी-वड़ीमछलियां। इससे भी अधिक पेड़ों पर तोता-मैना, मोर, पपीहा इत्यादि भांति-भांति के पक्षीअपनी-अपनी वोलियां वोलते हुए और प्रत्येक आगार में किसी छुपे स्थान पर रखे दीपकों से जगमग करता हुआ प्रकाश, आगार में

कालीन, रेशमी चादरें और उसपर अखरोट और सागवान की लकड़ी का साजोसामान तथा रत्नजडित द्वारों तथा खिडकियों पर पर्दे, झाड़फानूस, सब कुछ इतना भव्य था कि इसका एक अंश मात्र ही राज्यप्रासाद में उपलब्ध था।

प्रतापादित्य मन्त्रमुग्ध की भांति सबको देखता हुआ चकित खड़ा रह गया। नोण ने आदरयुक्त भाव में पूर्ण भवन दिखाकर बैठकघर में लाकर खड़ा किया और वहां एक अति सुन्दर स्त्री से परिचय कराने लगा। उसने कहा, "महाराज, यह इस गृह की स्वामिनी और इस दास की पत्नी नरेन्द्रप्रभा है। अभी पिछले वर्ष इसने मुझे वरा है और मैं इससे अति प्रसन्न हूं।"

प्रतापादित्य ने इतने सुन्दर घर में इस अप्सरा-तुल्य सेठ की पत्नी को देखा, तो स्तब्ध खड़ा रह गया। नरेन्द्रप्रभा का सौन्दर्य रत्नजडित भूषणों से कई गुणा बढ़ रहा था।

नरेन्द्रप्रभा ने महाराज को मन्त्रमुग्ध की भांति खड़े देख कह दिया, "महाराज, पधारिए! दासी कहवा ला रही है।"

उस समय तो प्रतापादित्य उस भवन में ऐसे विचरने लगा, मानो वह कोई अति सुन्दर मनमोहक स्वप्न देख रहा हो।

सेठ और महाराज तथा उनके बीच में नरेन्द्रप्रभा बैठी थी। तीनों अति स्वादिष्ट पेय ले रहे थे। पीते-पीते प्रतापादित्य भूल जाता था कि वह अपनी एक प्रजा के घर में बैठा है।

नरेन्द्रप्रभा सब समझ रही थी। नारीसुलभ प्रतिभा से वह जान गई थी कि महाराज उसकी रूप-राशि पर मुग्ध हो रहा है। वह स्वयं भी मन में अनुभव कर रही थी कि कश्मीर-नरेश में एक विशेष आकर्षण है।

कहवा पीने के उपरान्त नोण देश-विदेश की कथाएं सुनाता रहा, परन्तु प्रतापादित्य तो सब समय में नरेन्द्रप्रभा के मुख पर ही देखता रहा था।

तब भोजन का समय हो गया। एक दर्जन दासियां तीन प्राणियों के भोजन की व्यवस्था कर रही थीं और फिर उनके भोजन करते समय अंगदेश की एक नर्तकी अपना संगीत और नृत्य प्रस्तुत करने लगी।

जब से प्रतापादित्य ने उस भवन में पदार्पण किया था, तब से ही वह स्वप्नवत् वहां विचर रहा था और तीन घण्टों का समय ऐसे निकल गया, मानो कुछ पल ही व्यतीत हुए हों।

नोण महाराज को उसके लिए नियत शयनागार में ले गया और वहां वही नर्तकी, जो भोजन के समय नृत्य करती हुई अपनी मधुर वाणी से संगीत प्रस्तुत कर रही थी, खड़ी थी। सेठ उन दोनों को वहां छोड़ अपने शयनागार में चला गया।

जब सेठ चला गया तो प्रतापादित्य ने नर्तकी से पूछा, "किसलिए खड़ी हो ?"

नर्तकी ने मुस्कराकर कहा, "श्रीमान् की सेवा के लिए।"

"क्या सेवा कर सकती हो ?"

"जो एक सुन्दर स्त्री पुरुष की कर सकती है।"

प्रतापादित्य ने आंखें मूंद कुछ विचार किया और आंखें खोल उसके मुख पर देखते हुए बोला, "तो तुम अपने को सुन्दर मानती हो ?"

"ऐसा मान ही घर की गृहिणी ने मुझे यहां भेजा है।"

"तो उसे जाकर कह दो कि हम तुम्हें उसकी तुलना में रुपये में से आठ आने समझते हैं।"

नर्तकी इस वाक्य से अपमानित अनुभव करती हुई आगार से निकल गई। वह गृहिणी के शयनागार के बाहर जा आवाज़ देने लगी, "मालिक !"

भीतर सेठ और उसकी पत्नी भी इसी विषय पर विचार कर रहे थे। नरेन्द्रप्रभा ने पति की शय्या पर बैठते हुए कहा, "प्रभु ! इन महाराज को आपने अपने घर लाकर अच्छा नहीं किया।"

"क्यों ? क्या हानि हुई है ?"

"यही कि वह मुझपर मोहित हो गया है।"

"तो क्या हुआ, होने दो ! पर-स्त्री की लालसा करने लगेगा तो मूर्ख बनेगा।"

इसपर नरेन्द्रप्रभा हंस पड़ी। हंसते हुए बोली, "परन्तु वह भी तो एक सुन्दर युवक है। आप अपनी सूरत दर्पण में देखिए।"

"परन्तु देवी, तुम्हारा मुझसे विवाह हुआ है।"

"यही तो कठिनाई है। अन्यथा उस शयनागार में भेजे जानेवाली स्त्री के स्थान पर मैं स्वयं वहां चली जाती।"

पति को क्रोध आने लगा था और इस समय नर्तकी ने बाहर से आवाज दी। सेठ उठकर पलंग से नीचे उतरकर बोला, "कौन?"

"श्रीमान्! रेणु नर्तकी।" बाहर से आवाज आई।

"हां, आ जाओ। क्या बात है? किसलिए आई हो?"

सेठ ने महाराज की रात-भर की सेवा के लिए रेणु को एक सौ स्वर्ण देने का वचन दिया था। वह स्वर्ण की हानि से निराश हो सूचना देने आई थी।

जब रेणु भीतर आई तो उसने बताया, "महाराज ने अपने आगार से निकाल दिया है।"

सेठ ने मुस्कराते हुए पूछा, "धक्के दे-देकर?"

"नहीं, सेठजी, अपमान कर। यह कहकर कि मैं सेठानीजी की तुलना में आठ आने भी नहीं हूं। हम इस प्रकार की तुलना को गाली समझती हैं।"

सेठ हंस पड़ा। हंसते हुए बोला, "इस अपमान के लिए मैं तुम्हें वही एक सौ स्वर्ण दूंगा जो महाराज की सेवा में रात-भर रहने के लिए देने-वाला था।"

नर्तकी इससे सन्तुष्ट हो अपने सोने के कमरे चली आई। जब वह सेठ के कमरे से निकल गई तो सेठ सेठानी से बोला, "तुम्हारा अनुमान ठीक निकला है। अब बताओ कि तुम क्या चाहती हो?"

"मैं महाराज की शय्या के भोग की इच्छा तो करती हू, परन्तु धर्म-बन्धन से बंधी हुई यहां पड़ी हू।"

सेठ गम्भीर विचार में मग्न हो गया। फिर बोला, "देवी! अब सो जाओ। मैं तुमसे प्रातः बात करूंगा।"

"मैं भी यही चाहती हू। मेरी इच्छा इस समय आपसे सहवास की नहीं रही।"

सेठ उसे आगार में अकेली छोड़ दूसरे आगार में चला गया। वह विचार कर रहा था कि नरेन्द्रप्रभा महाराज प्रतापादित्य के आगार में

चली जाएगी।

प्रातःकाल उठ वह देखने आया तो उसकी पत्नी गहरी नींद सो रही थी। उसे सन्देह हुआ कि नरेन्द्रप्रभा रात-भर प्रतापादित्य की सेवा में रही है और अब थककर सो रही है। अतः वह प्रतापादित्य के आगार में गया। वहां महाराज स्नानादि से निवृत्त हो, वस्त्र पहन राज्यप्रासाद को लौट जाने के लिए तैयार बैठा था।

सेठ ने पूछा, "महाराज ! किधर ?"

"अब जाना चाहिए न ?"

"मैं समझता हूं कि प्रातः का अल्पाहार लेकर जाएं तो बहुत कृपा होगी।"

प्रतापादित्य भौचक्का हो मुख देखता रह गया। फिर कुछ विचार कर बोला, "सेठजी ! मैं समझता हूं कि मैंने यहां आकर भूल की है। यदि मुझे विदित होता कि तुम्हारी पत्नी इतनी सुन्दर है, तो यहां कभी नहीं आता।"

"परन्तु महाराज ! वह जैसी भी है, आपको तो प्राप्त हुई है।"

"प्राप्त ? नहीं सेठजी ! यह आप क्या कह रहे हैं ? मैं इतना कृतघ्न नहीं कि जिसका आतिथ्य स्वीकार करूं, उसके घर में ही डाका डाल दूं।"

"मैं तो उसे स्वेच्छा से आपके आगार में आने की स्वीकृति दे अपने शयनागार में चला गया था।"

"परन्तु वह नहीं आई। मैं उसके आने की आशा भी नहीं करता था। उसका आना उचित भी नहीं था।"

"तो वह नहीं आई ?"

"नहीं सेठजी ! मैं अब यहां से जाना चाहता हूं।"

नोण मुख देखता रह गया। प्रतापादित्य उठा और सेठ के मकान से बाहर निकल गया। उसने अपने सेवकों को लौटने के लिए रथ तैयार करने के लिए पहले ही कह रखा था। सेवकों ने महाराज के लौटने के लिए सब तैयारी की हुई थी और उसके सेठ के भवन से बाहर निकलते ही सब राज्यप्रासाद को चल पड़े।

सेठ नोण अवाक् मुख देखता रह गया। वह पुनः नरेन्द्रप्रभा के आगार

में आया तो वह अभी भी नींद में करवटें ले रही थी। सेठ ने उसे आवाज दी तो वह अलसाए नेत्रों से उठकर पलंग पर बैठ गई।

सेठ ने पूछा, "क्यों प्रभा ! रात कैसी बीती ?"

"मैं तो आधी रात तक पलंग पर करवटें लेती हुई पड़ी रही थी। बहुत विचार किया था और अपनी मनःस्थिति पर अपने को धिक्कारती हुई दो पहर रात व्यतीत होने पर सो सकी थी। इच्छा होती है कि अभी कुछ देर तक और सोऊं।

"परन्तु घर में मेहमान आए हुए हैं। इस कारण मैं शीघ्र ही तैयार हो आपके साथ वहां चलती हूं।"

"परन्तु प्रभा, महाराज तो चले गए हैं।"

"क्यों ?"

"वह कह रहे थे कि तुम्हारी सूरत देख अपने पर वह नियन्त्रण नहीं रख सकते और इसे अनुचित समझ तुम्हारे जागने से पहले ही वह यहां से विदा हो गए हैं।"

नरेन्द्रप्रभा विस्मय से मुख देखती रह गई। दोनों अपने-अपने नित्य-कर्म में लग गए। महाराज प्रतापादित्य दोनों पति-पत्नी में एक लकीर खींच गया और उनमें से कोई भी लकीर को पार नहीं कर सका।

नरेन्द्रप्रभा अनुभव करती थी कि वह मन से कुत्सित विचार करने पर पत्नी के धर्म से पतित हो चुकी है और सेठ समझता था कि पत्नी असती हो गई है। जब मन से वह पर-पुरुष पर आसक्त हो गई तो वह पतिव्रत-धर्म से पतित हो गई है। इससे वह अब एक कुलटा होने के कारण ग्रहण करने के योग्य नहीं रही। परिणाम यह हुआ कि दोनों उस रात के उप-रान्त पति-पत्नी नहीं रहे। जब वे एक-दूसरे को देखते थे तो ग्लानि अनु-भव कर मुख मोड़ लेते थे।

नरेन्द्रप्रभा उत्तर पांचाल के एक निर्धन ज़मीदार की लड़की थी और सेठ नोण ने उसके पिता को बहुत-सा धन देकर उससे विवाह किया था। नरेन्द्रप्रभा का पिता क्षत्रिय वर्ण का था और नोण एक वैश्य था। धन के लोभ में ही पिता पुत्री को निम्न वर्ण में विवाहने पर तैयार हुआ था। इस-पर भी विवाह विधि-विधान के अनुसार हुआ था।

कुछ दिन के उपरान्त नोण महाराज प्रतापादित्य को मिलने गया तो वह उसकी सूरत-शक्ल देख चकित रह गया। महाराज प्रतापादित्य का मुख और शरीर ऐसे मुरझा गया था, जैसे पेड़ से टूटकर गिरी डाल के पत्ते मुरझा जाते हैं।

नोण ने झुककर प्रणाम किया और पूछने लगा, "महाराज ! आपको क्या हुआ है ?"

"कुछ समझ नहीं आ रहा। शरीर सूखता जाता है। इस यौवनकाल में ही मुख पर झुरियां पड़ती प्रतीत होती हैं।"

नोण मुख देखता रह गया। उसने कुछ विचारकर कहा, "महाराज! मैं देख रहा हूं कि एक अन्य भी है जो आपके विरह में नित्य व्रत रखकर अपने को अन्त की ओर ले जा रही है।"

"मुझे ज्ञात है।" प्रतापादित्य ने कहा, "मैंने दासियां भेज तुम्हारी पत्नी की मनःस्थिति का पता किया है। परन्तु यह पता चला है कि वह अपने को धर्म से बद्ध पा इस शरीर को त्यागने का यत्न कर रही है। मैं भी समझता हूं कि यह भाग्य का खेल है और इसे मैं टाल नहीं सकता। कदाचित् अगले जन्म में हमारा समागम हो सकेगा।"

सेठ नोण ने मुस्कराते हुए कहा, "भगवन् ! यह मोह और लगाव शरीर का है और यदि शरीर रहते सफल न हुआ तो फिर यह कभी भी सफल नहीं होगा। यह शरीर माया है और यह मोह भी माया है। इस काल्पनिक वस्तु के लिए तो आप अपने नरेश के कर्तव्य को छोड़कर पतन की ओर चल पड़ेंगे।"

"क्या माया है ?" प्रतापादित्य ने कुछ न समझते हुए पूछ लिया।

नोण ने बताया, "संसार में ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। ये मन और बुद्धि का ही खेल है, जो मैं देख रहा हूं। आप दोनों का, मेरा अभिप्राय है कि कश्मीर-नरेश और नरेन्द्रप्रभा का, संयोग जल पर तैरते दो बुलबुलों का ही है। दोनों समय पर फूट जाएंगे और फिर आकाश आकाश से मिल जाएगा।"

प्रतापादित्य इस नई जीवन-मीमांसा को समझ नहीं रहा था। वास्तव में दक्षिण देश में उत्पन्न आचार्य शंकर के वाद की गूंज अभी कश्मीर में

नही पहुंची थी और नोण देश-भर में व्यापार के सम्बन्ध में घूमता हुआ इस मीमासा को हृदयंगम कर चुका था।

जब प्रतापादित्य नही समझा तो नोण ने समझाया। उसने कहा, "महाराज ! इस अम्बर मे इसके अन्त तक एक अद्वितीय शक्ति विद्यमान है। उसे ब्रह्म कहते है। उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही। वह एक ही है। अद्वितीय है और अवर्णनीय है। उसके विषय मे विचार करते-करते बड़े-बड़े विद्वान, योगी, योगीश्वर कहते हैं - 'नेति…नेति'।

"इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नही। जो कुछ दिखाई देता है, वह भ्रम है। जैसे सीपी मे जल चादी प्रतीत होता है, वैसे ही ये प्रतापादित्य, नोण और नरेन्द्रप्रभा दिखाई देते हैं।

"महाराज ! यह घटनावश है कि नोण नाम का जल पर बना बुलबुला और नरेन्द्रप्रभा के नामवाला बुलबुला परस्पर इकट्ठे हो गए थे, परन्तु हवा का एक झोका आया और नरेन्द्रप्रभा के नामवाला बुलबुला उड़कर प्रतापादित्य के नामवाले बुलबुले के समीप जा पहुंचा है। दोनो बुलबुले परस्पर सयोग बनाना चाहते है और मैं यत्न कर रहा हू कि वे समीप-समीप न आएं और इस अस्वाभाविक कर्म का परिणाम हो रहा है कि दोनों क्षीण होते जाते हैं।"

"और क्या होना चाहिए ?" प्रतापादित्य कुछ अधिक पढ़ा-लिखा व्यक्ति नही था। इस कारण सेठ के कथन के तत्त्व को समझ नही सका। उसने नोण सेठ की वात को अपनी उत्कट इच्छा के अनुकूल समझते हुए पूछा था।

नोण ने कहा, "मैं नरेन्द्रप्रभा को आपके राज्यप्रासाद मे छोड़ इस देश से विदा होने का विचार रखता हू। दोनों बुलबुले समीप-समीप रहते हुए समय पर फूटेंगे और फिर ब्रह्म ब्रह्म मे लीन हो जाएगा।"

प्रतापादित्य इस प्रस्ताव से अति प्रसन्न था। उसने पूछ लिया, "सेठजी ! मैं आपका क्या हित कर सकता हू ?"

"महाराज ! मैंने नरेन्द्रप्रभा के पिता को अपने से निम्न वर्ण मे लड़की को विवाहने के लिए पाच सो स्वर्ण दिए थे। मैं एक वैश्य प्रकृति का व्यक्ति हूं। यदि आप मुझे वह धन दे दें तो मैं समझता हू कि जिस घर

की मिट्टी है, वहां लग जाएगी। एक क्षत्रिय कुल की स्त्री एक क्षत्रिय कुल-भूषण पुरुष के पास पहुंच जाएगी और एक वैश्य का धन वैश्य को मिल जाएगा।"

नीलकण्ठ बैठा नोण की जीवन-मीमांसा को सुन रहा था। वह समझ रहा था कि किसी अशिक्षित, अनुभवविहीन व्यक्ति की इस मीमांसा को यह सत्य मान भ्रम में फंसा हुआ एक उचित कार्य कर रहा है।

नीलकण्ठ ने कोषाध्यक्ष के नाम हुण्डी लिख दी और उसमें लिखा कि नोण सेठ को महाराज प्रतापादित्य की आज्ञा से पांच सौ स्वर्ण देकर भर-पाई लिखा ली जाए।

सेठ ने हुण्डी पढ़ी और अति प्रसन्न हो नमस्कार कर विदा हो गया। प्रतापादित्य ने महामात्य नीलकण्ठ से पूछा, "यह सेठ क्या कह रहा था? मुझे तो कुछ भी समझ नहीं आया!"

"देखिए, महाराज! मैंने आपके रोग का पता एक तान्त्रिक से किया है। उसका कहना है कि आपका यह रोग आपके किसी पूर्वजन्म में देवलोक की किसी देवी का उत्पन्न किया हुआ है। आपको उस देवी ने किसी कारण से एक वर दिया था और आपने उसे अपनी पत्नी बनने का वर मांग लिया। उस देवी ने अपने वर का अधूरा पालन किया था। वह पत्नी तो बनी, परन्तु पत्नी का कार्य नहीं किया। न तो उसने आपसे सहवास किया और न ही आपको कोई सन्तान दी। इस कारण उसको पुनः इस संसार में अपना वचन-पालन करने के लिए आना पड़ा है। वही देवी अब नरेन्द्रप्रभा के नाम से इस संसार में है। भाग्य उसे आपकी सेवा में ले आया है। यदि इस जन्म में आप उसे स्वीकार नहीं करेंगे तो आपको पुनः इस लोक में जन्म लेना होगा और उस देवी का दिया वर सफल करना होगा।

"जब आपको वर मिला था, आपका नाम विश्वनाथ था और देवी थी भ्रमरीदेवी। आपको जुआ खेलने की लत थी। पीछे जब आपका उस देवी से विवाह हुआ तो आपका नाम रणादित्य था और आप कश्मीर-नरेश थे। देवी का नाम था रणरम्भा। अब इस जन्म में आप ही वह रणादित्य हैं और रणरम्भा ही नरेन्द्रप्रभा है।

"महाराज! यह कर्मयोग है। आपको भोगना ही होगा।"

प्रतापादित्य नीलकण्ठ की बात सुन भौचक्का हो मुग्ध देखता रह गया।

६

नोण सेठ अपनी पत्नी नरेन्द्रप्रभा को कश्मीर-नरेश के पास यह कहकर लाया, "मैं दक्षिण में अपना व्यवसाय देखने जा रहा हूं और यह हमारा कर्तव्य है कि जाने से पूर्व महाराज को कुछ भेंट अर्पण करें। इस कारण हमें उनके राज्यप्रासाद में जाना चाहिए। तुम्हें महारानी पद्मावती को कुछ भेंट देने के लिए ले चलना चाहिए। मैं महाराज के लिए ले चलता हूं।"

नरेन्द्रप्रभा इस विचार से कि अब वह श्रीनगर से जा रही है और यहां से दूर जाने पर वह अपनी मानसिक दुर्बलता का पार पा जाएगी, पति के साथ राज्यप्रासाद को चल पड़ी।

राज्यप्रासाद पर पहुंच नरेन्द्रप्रभा ने महारानी पद्मावती से मिलने की इच्छा भीतर कहलवा भेजी और नोण ने महाराज की सेवा में उपस्थित होने की स्वीकृति मांगी।

दोनों को राज्यप्रासाद के भिन्न-भिन्न कक्षों में पहुंचा दिया गया। सेठ महाराज प्रतापादित्य के सम्मुख उपस्थित हो बोला, "महाराज! मैंने अपने वचन को पूर्ण करने के लिए नरेन्द्रप्रभा को महारानी की सेवा में भेज दिया है और मैं आपसे विदा मांगने आया हूं। आपसे करबद्ध निवेदन है कि उस देवी को आप प्रेम से अपने अनुकूल बनाने का यत्न करेंगे।"

इस समय तक प्रतापादित्य नीलकण्ठ से अपने पूर्वजन्म की कथा सुन विचार कर रहा था कि यदि यह सत्य है तो नरेन्द्रप्रभा स्वतः उसकी भुजा-पाश में आएगी। भाग्य अति प्रबल शक्ति है। कोई विरला ही इसका विरोध कर पुरुषार्थ का फल पाता है। सेठ जब महाराज को पांच सौ स्वर्ण से अधिक मूल्य की वस्तुएं भेंट में देकर जाने लगा तो प्रतापादित्य ने सेठ से गले मिलते हुए कहा, "बन्धु! जो मैंने नरेन्द्रप्रभा के लिए पांच सौ स्वर्ण दिया है, तुम तो उससे कहीं अधिक मूल्य की ये वस्तुएं मुझे दे चले हो!"

"श्रीमान् ! वह जो लिया था, वैश्य के नाते व्यय किया धन ही वापस लिया था और यह अपने भाई, जिसके पास अपनी अतिप्रिय वस्तु रखने के लिए दे चला हूं, उसकी रक्षा के प्रतिकार में ही दे चला हूं।

"राजन ! आप अच्छे-बुरे सब प्रजागणों का पालन करते हैं। इसी कारण भूतल पर नरेश को परमात्मा का अवतार कहा जाता है। आप प्रजागणों के गुण-दोष को विस्मरण कर ही अपना व्यवहार सबसे समान रखेंगे।"

इतना कहते-कहते नोण की आंखें आंसुओं से भर गईं। वह अपने मनोद्‌गारों को छुपाने के लिए तुरन्त ही मुख मोड़ आगार से बाहर निकल गया।

प्रतापादित्य के मन में आया कि नरेन्द्रप्रभा को रथ में बिठाकर उसके पति के पास वापस भेज दे और कहला भेजे कि उसकी भेंट में अपने पास से कुछ और अधिक धन मिलाकर दहेज के रूप में नरेन्द्रप्रभा को अपने ससुराल भेज रहा है। उसे अस्वीकार नहीं करना चाहिए। ऐसा वह विचार करता हुआ उठा। इसी विचार से वह अपनी बैठक से निकल महारानी पद्मा के आगारों को चल पड़ा। परन्तु नरेन्द्रप्रभा उससे अधिक जल्दी में थी और महारानी से विदा ले राज्यप्रासाद के द्वार की ओर आ रही थी कि मार्ग में ही प्रतापादित्य मिल गया।

प्रतापादित्य ने उसे पूर्ण स्थिति समझाने के लिए दासियों से पृथक् एक आगार में ले जाकर कहा, "देवी ! तनिक इधर आइए। आपको एक सूचना देना चाहता हूं।"

नरेन्द्रप्रभा नहीं चाहती थी कि महाराज से एकान्त में बात करे, परन्तु वह इनकार नहीं कर सकी। वह अपने मन की अवस्था का वर्णन सबके सामने नहीं करना चाहती थी। इस कारण वह महाराज के साथ पृथक् आगार में गई तो बिना कुछ भी बात किए दोनों परस्पर आलिंगन करने लगे और फिर भूमि पर बिछे कालीन पर ही दोनों लोटपोट होने लगे।

एक घड़ी-भर के सहवास के उपरान्त दोनों विस्मय में एक-दूसरे का मुख देखने लगे। नरेन्द्रप्रभा ने विस्मय में अपने व्यवहार पर अवलोकन

करते हुए पूछा, "महाराज ! यह आपने क्या किया है ?"

"मैंने किया है ? मैं समझता हूं कि देवीजी ने कुछ किया है। मैं तो वायु से उड़ते हुए एक बुलबुले की भांति एक अन्य बुलबुले के समीप आ गया था।

"देवी ! मैं इसमें अपने को दोषी नहीं मानता। यदि कुछ किसीमें दोष है तो कह नहीं सकता कि किसका कितना है।

"कल ही मुझे एक तान्त्रिक ने यह कथा सुनाई है।"

इतना कह प्रतापादित्य ने रणादित्य और रानी रणरम्भा उपनाम भ्रमरीदेवी की कथा सुना दी और कहा कि उन्हीं योगेश्वरजी का कहना है कि मैं पूर्वजन्म का रणादित्य हूं और तुम भ्रमरीदेवी हो।

नरेन्द्रप्रभा बैठी विचार करने लगी थी कि यह ठीक हुआ है अथवा नहीं। प्रतापादित्य ने कहा, "अब तो जो कुछ हो गया सो हो गया। मैं समझता हूं कि यदि तुम चाहो तो मैं अभी भी तुमको सेठजी के पास भेज सकता हूं। वह सेठ अपने मन से तुम्हें मुझे दे गया है। वह मुझसे पांच सौ स्वर्ण भी ले गया है, जो उसने तुम्हारे पिता को तुमसे विवाह करने के लिए दिया था।"

नरेन्द्रप्रभा भौचक्की हो मुख देखती रह गई। उसने आंखें नीचे किए हुए कहा, "महाराज ! मैं अब पतिव्रत-धर्म से पतित हो चुकी हूं। अब मैं अपने पति के पास नहीं जा सकती। यदि आपने यह पूर्वजन्म की बात न बताई होती तो मैं आत्महत्या करने का विचार कर रही थी। अब सोचती हूं कि यह आत्मा से आत्मा का संयोग ही हुआ है। यह उस पूर्वजन्म में चार सौ वर्ष तक साथ-साथ रहने और साथ-साथ धर्म-कर्म करने का ही मुझे फल प्रतीत होता है जो आज नहीं तो फिर कभी होना था। इस कारण मैं इसका तिरस्कार नहीं कर सकती। अब आप कृपा कर अपनी रानीजी को कह दीजिए कि वह मुझे अपनी दासी के रूप में वहां रख लें।"

"मैं रानी पद्मावती के सम्मुख झूठ नहीं बोलूंगा। मैं उसे सत्य-सत्य कथा बता दूंगा और यदि उसने तुम्हारा अपमान किया तो मैं तुमको लेकर विन्ध्याचल के वनों में रहने के लिए चल दूंगा।"

"नहीं, महाराज ! यदि रानीजी मुझे दासी के रूप में भी नहीं रखना चाहेंगी तो मैं जल मरूंगी ।"

"मैं समझता हूं कि इस प्रकार की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। चलो, महारानीजी से वात कर लें ।"

दोनों उठ महारानी पद्मावती के आगार को चल पड़े। पद्मावती दोनों को प्रसन्न और सन्तुष्ट देख सव समझ गई। वह महाराज के सेठजी के घर पर जाने और वहां सेठानी के मोह में फंस जाने की वात सुन चुकी थी। वह नित्य-प्रति महाराज के मुख को ओजविहीन होता भी देख रही थी और अव सेठानी के साथ प्रफुल्लित मुख अपने पति को आते देख मुस्कराते हुए नरेन्द्रप्रभा से पूछने लगी, "तो सेठानीजी, घर जाती-जाती मार्ग में कांटेदार झाड़ी के साथ उलझ गई हैं न ?"

नरेन्द्रप्रभा तो भूमि की ओर देख रही थी। वात प्रतापादित्य ने की। उसने कहा, "मैं इन्हें आपके पास इस कारण लाया हूं कि आप इन्हें इस राज्यप्रासाद में रहने को एक आगार दे दें। मैंने इनको यहां ही रहने का प्रस्ताव किया है और यह इन्होंने अति कृपा कर स्वीकार कर लिया है ।"

"और इनके पतिदेव ? यह तो कह रही थीं कि वह श्रीमान्‌जी से विदा लेने आपकी वैठक में वैठे हैं !"

"यह विलकुल ठीक कह रही थीं। वह अपनी पत्नी के मनोभावों के ज्ञान पर मुझसे इनको यहां ही रख लेने के लिए कह गए हैं। उन्होंने इन्हें इनके पिताजी से पांच सौ स्वर्ण में मोल लिया था। इनके उत्तरी पांचाल में इस प्रकार के विवाह करने की प्रथा है, जहां लड़कियों का विवाह धन लेकर किया जाता है।

"इनके पति एक कुशल वैश्य की भांति इनपर व्यय किया धन मुझसे ले गए हैं।"

पद्मावती हंस पड़ी और नरेन्द्रप्रभा की वांह पकड़कर अपने समीप विठाकर वोली, "वहन ! तुम यहां वैठो। इस विशाल राज्यप्रासाद में तुम जहां चाहो, रह सकोगी। मैं तुम्हें अपनी वहन की भांति यहां रखूंगी।"

नरेन्द्रप्रभा के पूर्वजन्म की कथा तो पद्मावती को कई मास पीछे पता चली। उस समय तक नरेन्द्रप्रभा के गर्भ ठहर चुका था।

पद्मावती ने एक पुत्र को जन्म दिया और समय पाकर नरेन्द्रप्रभा के भी एक लड़का हुआ। अब दोनों राजकुमार महल में पलने लगे।

पद्मावती अपने सामान्य रूप-लावण्य को देख-देख स्वतः ही महाराज से पीछे हटती जाती थी और नरेन्द्रप्रभा को सदा महाराज के समीप और समीप आने का अवसर देती रहती थी।

इस प्रकार चलते हुए दो वर्ष का काल व्यतीत हो गया। इतने काल में यह पूर्ण राज्य में विख्यात हो चुका था कि महाराज की दूसरी पत्नी अद्वितीय सुन्दरी है, और जब कभी महाराज अपनी दूसरी रानी को लेकर राज्यप्रासाद से कहीं बाहर जाते तो लोगों की भीड़ एकत्रित होने लगती थी।

पद्मावती को यह समाचार मिलता रहता था। वह अपनी स्थिति को अपने भाग्य के कारण समझ सन्तुष्ट रहती थी। एक दिन महाराज भगवान कृष्ण की मूर्ति एक मन्दिर में प्रतिष्ठित कर नरेन्द्रप्रभा के साथ लौटे तो मन्दिर से मिला प्रसाद ले पद्मावती के आगारों में जा पहुंचे। श्रीनगर की अपार जनता द्वारा रानीजी की जय-जयकार से अति प्रसन्न दोनों के मुख पर अलौकिक उल्लास स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

पद्मावती दोनों को आता देख अपने आसन से उठ उनका सत्कार करने के लिए आगे बढ़ी और नरेन्द्रप्रभा से गले मिल उसे महाराज के साथ प्रसन्न देख बोली, "मैं आज अति प्रसन्न हूं।"

नरेन्द्रप्रभा जब भी पद्मावती के सम्मुख आती थी, वह मन ही मन अनुभव किया करती थी कि वह किसी दूसरे के घर में घुसपैठ किए हुए है। इससे वह सदा पद्मावती का उचित मान करती और उसको अपने से ऊंचा समझती थी। उसने पद्मावती को अपनीप्र जा में ख्याति पर प्रसन्नता प्रकट करते सुन कह दिया, "यह सब मैं ज्येष्ठ महारानीजी की कृपा का फल मानती हूं, अन्यथा मैं विचार करती थी कि मुझे इस राज्यप्रासाद में महारानीजी के जूतों में बैठने का स्थान मिलेगा।"

"परन्तु बहन, तुम्हारा सम्बन्ध तो श्रीमान्‌जी के साथ पूर्वजन्म का है न। मुझे यह बताया गया है कि उस जन्म में भी आप किसी देवता की भार्या थी और प्रेम करने लगी थी इस मर्त्यलोक के एक मानव से। आपने

"नहीं, महाराज ! यदि रानीजी मुझे दासी के रूप में भी नहीं रखना चाहेंगी तो मैं जल मरूंगी।"

"मैं समझता हूं कि इस प्रकार की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। चलो, महारानीजी से बात कर लें।"

दोनों उठ महारानी पद्मावती के आगार को चल पड़े। पद्मावती दोनों को प्रसन्न और सन्तुष्ट देख सब समझ गई। वह महाराज के सेठजी के घर पर जाने और वहां सेठानी के मोह में फंस जाने की बात सुन चुकी थी। वह नित्य-प्रति महाराज के मुख को ओजविहीन होता भी देख रही थी और अब सेठानी के साथ प्रफुल्लित मुख अपने पति को आते देख मुस्कराते हुए नरेन्द्रप्रभा से पूछने लगी, "तो सेठानीजी, घर जाती-जाती मार्ग में कांटेदार झाड़ी के साथ उलझ गई हैं न ?"

नरेन्द्रप्रभा तो भूमि की ओर देख रही थी। बात प्रतापादित्य ने की। उसने कहा, "मैं इन्हें आपके पास इस कारण लाया हूं कि आप इन्हें इस राज्यप्रासाद में रहने को एक आगार दे दें। मैंने इनको यहां ही रहने का प्रस्ताव किया है और यह इन्होंने अति कृपा कर स्वीकार कर लिया है।"

"और इनके पतिदेव ? यह तो कह रही थीं कि वह श्रीमान्‌जी से विदा लेने आपकी बैठक में बैठे हैं !"

"यह बिलकुल ठीक कह रही थीं। वह अपनी पत्नी के मनोभावों के ज्ञान पर मुझसे इनको यहां ही रख लेने के लिए कह गए हैं। उन्होंने इन्हें इनके पिताजी से पांच सौ स्वर्ण में मोल लिया था। इनके उत्तरी पांचाल में इस प्रकार के विवाह करने की प्रथा है, जहां लड़कियों का विवाह धन लेकर किया जाता है।

"इनके पति एक कुशल वैश्य की भांति इनपर व्यय किया धन मुझसे ले गए हैं।"

पद्मावती हंस पड़ी और नरेन्द्रप्रभा की बांह पकड़कर अपने समीप बिठाकर बोली, "बहन ! तुम यहां बैठो। इस विशाल राज्यप्रासाद में तुम जहां चाहो, रह सकोगी। मैं तुम्हें अपनी बहन की भांति यहां रखूंगी।"

नरेन्द्रप्रभा के पूर्वजन्म की कथा तो पद्मावती को कई मास पीछे पता चली। उस समय तक नरेन्द्रप्रभा के गर्भ ठहर चुका था।

पद्मावती ने एक पुत्र को जन्म दिया और समय पाकर नरेन्द्रप्रभा के भी एक लड़का हुआ। अब दोनों राजकुमार महल में पलने लगे।

पद्मावती अपने सामान्य रूप-लावण्य को देख-देख स्वतः ही महाराज से पीछे हटती जाती थी और नरेन्द्रप्रभा को सदा महाराज के समीप और समीप आने का अवसर देती रहती थी।

इस प्रकार चलते हुए दो वर्ष का काल व्यतीत हो गया। इतने काल मे यह पूर्ण राज्य मे विख्यात हो चुका था कि महाराज की दूसरी पत्नी अद्वितीय सुन्दरी है, और जब कभी महाराज अपनी दूसरी रानी को लेकर राज्यप्रासाद से कही बाहर जाते तो लोगो की भीड एकत्रित होने लगती थी।

पद्मावती को यह समाचार मिलता रहता था। वह अपनी स्थिति को अपने भाग्य के कारण समझ सन्तुष्ट रहती थी। एक दिन महाराज भगवान कृष्ण की मूर्ति एक मन्दिर मे प्रतिष्ठित कर नरेन्द्रप्रभा के साथ लौटे तो मन्दिर से मिला प्रसाद ले पद्मावती के आगारो मे जा पहुचे। श्रीनगर की अपार जनता द्वारा रानीजी की जय-जयकार से अति प्रसन्न दोनो के मुख पर अलौकिक उल्लास स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

पद्मावती दोनो को आता देख अपने आसन से उठ उनका सत्कार करने के लिए आगे बढी और नरेन्द्रप्रभा से गले मिल उसे महाराज के साथ प्रसन्न देख बोली, "मैं आज अति प्रसन्न हू।"

नरेन्द्रप्रभा जब भी पद्मावती के सम्मुख आती थी, वह मन ही मन अनुभव किया करती थी कि वह किसी दूसरे के घर मे घुसपैठ किए हुए है। इससे वह सदा पद्मावती का उचित मान करती और उसको अपने से ऊचा समझती थी। उसने पद्मावती को अपनीप्र जा मे ख्याति पर प्रसन्नता प्रकट करते सुन कह दिया, "यह सब मैं ज्येष्ठ महारानीजी की कृपा का फल मानती हू, अन्यथा मैं विचार करती थी कि मुझे इस राज्यप्रासाद मे महारानीजी के जूतों मे बैठने का स्थान मिलेगा।"

"परन्तु बहन, तुम्हारा सम्बन्ध तो श्रीमान्‌जी के साथ पूर्वजन्म का है न। मुझे यह बताया गया है कि उस जन्म मे भी आप किसी देवता की भार्या थी और प्रेम करने लगी थी इस मर्त्यलोक के एक मानव से। आपने

उस जन्म में पतिव्रत-धर्म पालन करते हुए अपने प्रेमी को अपने शरीर को छूने तक नहीं दिया था। चार सौ वर्ष तक आप इकट्ठे विचरते रहे, परन्तु दोनों धर्म का पालन करते रहे थे।"

इस समय तक तीनों पुनः मसनद पर बैठ गए थे। नरेन्द्रप्रभा पद्मावती के एक ओर बैठी थी और महाराज प्रतापादित्य पद्मावती के दूसरी ओर बैठा हुआ था।

पद्मावती ने नरेन्द्रप्रभा को अतीत की बात स्मरण कराई, तो नरेन्द्र-प्रभा ने कहा, "तब मैं देवलोक की वासिनी थी और उस समय मेरी आत्मा इतनी प्रबल थी कि शरीर के प्रलोभनों को नियन्त्रण में रख सकी थी, परन्तु अब इस मानवलोक में रहते हुए मैं शरीर के आवेगों को नियन्त्रण में नहीं रख सकी। शरीर आत्मा पर विजय पा गया है।"

पद्मावती ने गम्भीर हो कहा, "मैं इससे उलट समझी हूं। वह यह कि देवलोक में आत्माएं सुन्दर शरीरों के बोझ के नीचे दबी रहती हैं और वहां शारीरिक धर्म के बन्धनों में बंधी रहती हैं। परन्तु इस मानवलोक में तो आत्मा को कर्म करने की स्वतन्त्रता रहती है। इस कारण बहन प्रभा की आत्मा शारीरिक धर्म के बन्धन तोड़कर अपने स्वाभाविक स्थान पर पहुंच गई है। यह बहन प्रभा की और श्रीमान्‌जी की आत्माओं का मिलन हुआ है और यह शरीर के बन्धन को तोड़कर हुआ है।"

इस विवेचना पर तो प्रतापादित्य हंस पड़ा और पूछने लगा, "तो पद्माजी का विचार है कि मानव-जन्म देव-जन्म से श्रेष्ठ है, जहां देव-जन्म में आत्मा को वह स्वतन्त्रता नहीं होती जो मानवलोक में होती है?"

"हां, श्रीमान्! मैं ऐसा ही समझती हूं। मानव-जन्म में जीवात्मा कर्म करने में स्वतन्त्र होता है। इसी कारण मानवलोक कर्मलोक है और देवलोक में तो आत्माएं भोग ही भोग सकती हैं। वहां कर्म करने की स्वतन्त्रता नहीं होती। देवलोक को भोगयोनी कहते हैं। वहां जीवात्मा को और आगे उन्नति करने का अवसर नहीं होता।

"देवलोक से भी ऊंचा ब्रह्मलोक है। वहां पर जाने का मार्ग भी मानवलोक ही है। देवलोक से आत्माएं पुनः इस मानवलोक में आती हैं, जिससे वे यहां अधिक श्रेष्ठता प्राप्त कर ब्रह्मलोक में जाने का अवसर प्राप्त

कर सकें।"

प्रतापादित्य चकित रह गया। वह यह तो जानता था कि पद्मावती अपनी बातों को मीमांसकों की भाषा में वर्णन करने का अभ्यास रखती है। इसी कारण प्रतापादित्य उसकी सामान्य रूपरेखा होने पर भी उससे लगाव रखता था। वह उसकी बातों में रस लिया करता था।

आज उसे देवलोक से मानवलोक को श्रेष्ठ कहते हुए सुन पूछने लगा, "तो देवीजी का विचार है कि हम देवताओं से श्रेष्ठ हैं ?"

"नहीं श्रीमान्, मैंने यह नहीं कहा। मैं यह जानती भी नहीं। मैं उस देवलोक को ऐसा समझती हूं, जैसे एक मनुष्य एक वर्ष-भर परिश्रम करे और उस परिश्रम का मूल्य ले किसी पहाड़ी स्थान पर मनोरंजन के लिए चला जाए और अपने अर्जित धन को वहां व्यय कर पुनः कार्य-क्षेत्र में आकर परिश्रम से उपार्जन करने लगे। पहाड़ पर गया पर्यटक कुछ उपार्जन नहीं करता, प्रत्युत कर्म-क्षेत्र में उपार्जित को व्यय ही करता है। यही बात देवलोक की है।

"मैं तो देवलोक में आ अपनी अर्जित पूंजी को व्यय करने के स्थान पर उसमें और अधिक पूंजी जमा करने में अपना कल्याण मानती हूं, जिससे मैं ब्रह्मलोक की यात्रा का व्यय अपने कर्मफल में बटोर लूं।"

"और वहां कर्मफल व्यय नहीं होते क्या ?" नरेन्द्रप्रभा ने पूछ लिया।

"व्यय तो सर्वत्र होते हैं। इस मानव-जीवन में भी अर्जित कर्मफल व्यय होते हैं और अन्य दो लोकों में भी होते हैं। अन्तर यह है कि देवलोक में अर्जन करने का अवसर नहीं होता। वहां तो जीवात्माएं विश्राम करने ही जाती हैं। यह विश्राम सोने के समान नहीं, वरन् एक शुद्ध जलवायु वाले स्थान पर जाकर चलते-फिरते, देखते-सुनते सब प्रकार के अनुभव करते हुए रहने के समान है।"

"ब्रह्मलोक में जीवात्मा को सुख-सुविधा तो देवलोक के समान और कई आचार्यों के कहने के अनुसार वहां से भी अधिक मिलती है, परन्तु वहां कर्म करने का भी अवसर होता है। कभी-कभी तो वहां की आत्माएं इस पृथ्वी पर भी आती हैं और यहां रहनेवाली आत्माओं का कल्याण करती हैं, उनको सन्मार्ग दिखाती हैं।"

देवलोक और ब्रह्मलोक के इस स्पष्ट चित्र को सुन प्रतापादित्य और नरेन्द्रप्रभा मुख देखते रह गए। नरेन्द्रप्रभा को समझ आने लगा था कि क्यों वह अपने देवलोक में पति की संगत से ऊबकर मानवलोक में आती थी और यहां निवास करने की लालसा करती थी।

एकाएक अपनी वर्तमान प्रसन्नता की मनःस्थिति में प्रतापादित्य कहने लगा, "मैं बड़ी महारानी के कष्टों को स्मरण कर सदा अपने व्यवहार पर लज्जा अनुभव किया करता हूं और विचार करता रहता हूं कि किस प्रकार उनके इन कष्टों को निवारण कर सकूं।"

"परन्तु श्रीमान् !" पद्मावती ने पूछ लिया, "मुझे कुछ कष्ट है, यह आप कैसे जानते हैं ? मैंने तो कभी ऐसा श्रीमान्‌जी से अथवा किसीसे भी कहा है, नहीं जानती। मैं अपने जीवन से सर्वथा सन्तुष्ट हूं।"

इसपर नरेन्द्रप्रभा ने कहा, "मेरे कारण बहनजी को पति की संगत से वंचित जो होना पड़ा है।"

"परन्तु मुझे तो वह प्राप्त है।" उसने महाराज की कमर में हाथ डाल अपने समीप करते हुए कहा, "इससे भी अधिक तो मुझे यह संगत उस समय प्राप्त होती है, जब मैं एकान्त में होती हूं।"

"अच्छा ! भला वह कैसे ?" नरेन्द्रप्रभा ने पूछ लिया, "क्या यह श्रीमान् मेरे ज्ञान से बाहर बहन पद्मावतीजी से मिलने आते रहते हैं ?"

पद्मावती हंस पड़ी। हंसते हुए बोली, "यह नहीं आते। यह तो बहन नरेन्द्रप्रभा की संगति में ही अधिक रस पाते हैं, परन्तु मैं श्रीमान्‌जी की संगत में मन ही मन इनके समीप आती रहती हूं। मानसिक संगत से तुष्टि अनुभव करती हूं और परमानन्द की प्राप्ति करती हूं।"

"अर्थात् बहनजी मानसिक व्यवहार करती हैं ?"

"हां, परन्तु इनके मन को तो ज्ञात भी नहीं होता और मैं स्वयं रसपान करती रहती हूं।"

इसपर प्रतापादित्य ने पूछ लिया, "अभिप्राय यह कि श्रीमतीजी मानसिक व्यभिचार करती हैं ?"

"इसे व्यभिचार नहीं कहा जा सकता। कारण यह कि मेरे इस व्यवहार से किसीको भी सुख-दुःख नहीं होता। यह मेरी अपनी आत्मा की

बात है।

"एक व्यापक आत्मा सबमें विद्यमान है। जब हम अपने को उसमें ले जाते हैं तो जल में घुले नमक की भाति जहां-जहां वह है, हम पहुंच जाते हैं और फिर वहां का रसास्वादन करने लगते हैं। जल, जिसमे नमक घुलता है, वह अपने-आपमें जल ही रहता है। वह स्थान भी जहा-जहा जल विद्यमान होता है और जहां-जहां वह नमक पहुचता है, जैसे का तैसा बना रहता है। यह तो नमक ही होता है जो अनेकों स्थानों का रसास्वादन करता है।"

पद्मावती से प्रतापादित्य का विवाह हुए चार वर्ष से ऊपर हो चुके थे और प्रतापादित्य उसकी बातों को समझने लगा था। वह समझ रहा था कि यह परमात्मा-आत्मा की बात कर रही है। परन्तु नरेन्द्रप्रभा तो इस ज्ञान से वंचित होने के कारण पद्मावती का टुकुर-टुकुर मुख देख रही थी। उसने पूछ लिया, "परन्तु बड़ी बहन! परमात्मा ही सर्वव्यापक ब्रह्म नहीं है क्या?"

यह वह काल था जब भारत में एक आचार्य 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' का घोष देश-भर में लगा चुका था और जनमानस अपने को ब्रह्म मान अपने को कुछ ऊपर उठ रहा अनुभव करने लगा था। सेठ नोण भी इसी विचार से प्रभावित अपनी पत्नी नरेन्द्रप्रभा पर भी वही प्रभाव डाल गया था। उसी प्रभाव के अनुरूप नरेन्द्रप्रभा ने यह प्रश्न कर दिया था। उसके इस प्रश्न पर तो प्रतापादित्य और पद्मावती, दोनों हसने लगे। उनके हंसने का कारण न समझते हुए नरेन्द्रप्रभा ने पूछ लिया, "तो मेरे इस प्रश्न मे कुछ हंसने की बात है क्या?"

"हा।" प्रतापादित्य ने गम्भीर हो कह दिया। उसने कहा, "हसने की बात यह है कि ऐसा मानने से कि सब कुछ ब्रह्म अर्थात् परमात्मा ही है, तो पत्नी और मा में अन्तर नही रह जाएगा।"

"तो कुछ अन्तर है क्या?" नरेन्द्रप्रभा ने पूछ लिया, "देखिए महाराज! आप इस विशाल देश के शासक हैं। आपके कार्यालय के बाहर खड़ा सेवक है। वह और आप दोनों ही मनुष्य हैं। परन्तु एक रत्नजडित वस्त्र-आभूषण पहने हुए विचरता है और दूसरा द्वार पर फटे-पुराने वस्त्र

पहने खड़ा है। दोनों मानव ही हैं और दोनों की टांगें, नाक, कान इत्यादि एकसमान उपस्थित हैं।

"मैं तो व्यवहार की बात कर रही हूं। राजा का व्यवहार अथवा राजा से दूसरों का व्यवहार वह नहीं जो राज्यप्रासाद पर खड़े प्रतिहार का है अथवा जो प्रतिहार से दूसरों का है। व्यवहार में भेद होने से व्यक्ति में भेद प्रकट होता है। व्यक्ति भिन्न-भिन्न हैं, अर्थात् आत्मा भिन्न-भिन्न हैं।"

"और भी कहा जा सकता है।" पद्मावती ने बातों का सूत्र अपने हाथ में लेते हुए कहा, "एक बीमार होता है तो दूसरा बीमार नहीं होता। जिस बीमार व्यक्ति को औषधि ठीक मिलती है, वह ही रोगमुक्त होता है, दूसरा नहीं होता।"

"परन्तु महाराज!" नरेन्द्रप्रभा ने कहा, "ये तो शरीर के धर्म हैं।"

"मैं भी तो यही कह रहा हूं कि सबके शरीर ब्रह्म नहीं। वे एक नहीं। ब्रह्म तो सर्वत्र एकसमान है। शरीर परमात्मा से भिन्न है। साथ ही एक शरीर दूसरे शरीर से भिन्न हैं।

"फिर शरीर जड़ है। यह अनुभव नहीं करता। अनुभव करनेवाला भी ब्रह्म अर्थात् सबमें एक ही नहीं। कारण यह कि किसीको मिठाई पसन्द है, तो किसीको खटाई।"

नरेन्द्रप्रभा मुख देखती रह गई।

पद्मावती ने अपनी बात आगे चला दी और कहा, "देखो, प्रभा बहन! मैं जब श्रीमान्जी से सहवास की इच्छा करती हूं तो उस समय ब्रह्म परमेश्वर में अपने को लीन कर लेती हूं। तब मैं जहां चाहूं, जिस आत्मा से चाहूं, सहवास कर लेती हूं। यह शरीर से नहीं होता। कारण यह कि शरीर से ऊपर एक है। वह तो परमात्मा से घुल-मिल जाता है।"

इसपर प्रतापादित्य के कहा, "तब तो मेरे नरेन्द्रप्रभा को यहां लाने से किसीको भी कुछ हानि नहीं हुई, अर्थात् मैंने किसीका बुरा नहीं किया।"

इस बात को सुन पद्मावती गम्भीर हो बोली, "महाराज! अतुल निधि रखनेवाले में उसकी रक्षा की सामर्थ्य भी होनी चाहिए।"

"अर्थात् नरेन्द्रप्रभा अतुल सम्पत्ति है औरहम उसकी रक्षा मे असमर्थ है ?"

पद्मावती ने कह दिया, "आपकी सामर्थ्य कहां है ! आप एक सुन्दर युवक हैं और मुझे अब ज्ञात हुआ है कि आप अपने पिता की सन्तान नही हैं। साथ ही यह कि आपके वास्तविक पिता की हत्या किसीने की थी। वही व्यक्ति अब आपकी भी हत्या कर सकता है।"

प्रतापादित्य को अपनी मा के रहस्य की बात का ज्ञान किसी अन्य को भी है, विदित नही था। फिर यह बात कि उसके पिता की किसीने हत्या की है, यह तो किसीको विदित नही था। इससे वह क्रोध अनुभव करने लगा था। उसे समझ आया था कि यह ज्ञान-ध्यान की बात करनेवाली स्त्री हत्यारों से भी सम्बन्ध रखती है।

पति के मुख पर क्रोध देख पद्मावती मौन हो गई। वह कुछ देर तक विचार कर बोली, "महाराज ! यह क्रोध का विषय नही। यह जाच का विषय है और अपनी रक्षा के प्रबन्ध का विषय है।"

इससे प्रतापादित्य शान्त हो बोला, "रानी ! मैं यही कर रहा हू। यदि पता चल जाए कि इस मिथ्यावाद का स्रोत कहा है, तो फिर इस विषय पर विचार करने का साधन प्राप्त हो जाएगा।"

"तो ऐसा करिए, आप अपनी माताजी से पता करिए। कदाचित् वह इस विषय पर प्रकाश डाल सकें। कम से कम वह यह तो बता सकेंगी कि किसने आपके पिता की हत्या की थी।"

प्रतापादित्य को तो यह विदित था कि वह वीरभद्र का पुत्र है और उसकी मां ने यह बताया था कि उसके पिता को धीरे-धीरे मरने के लिए औषधि दी गई थी, तो क्या महाराज दुर्लभवर्धन की हत्या मे मा का हाथ था ? परन्तु पद्मावती तो यह भी जानती थी कि वह दुर्लभवर्धन का पुत्र नही और फिर उसके पिता की हत्या की बात भी कर रही थी, अर्थात् वह जानती है कि उसने अपने वास्तविक पिता की हत्या की है। वह इस गुत्थी का विचार कर कांप उठा। उसकी मा ने अपने विवाहित पति की हत्या की थी और उसने अपने पिता की, यह जानते हुए भी कि वह उसका पिता है, हत्या की थी।

महाराज को वस्तुस्थिति तक पहुंचते देख पद्मावती ने कह दिया, "महाराज ! मेरी सूचना है कि आप निर्दोष नहीं। इसपर भी मुझे उस सूचना पर विश्वास नहीं। मैं आपको इतना क्रूर नहीं समझती।"

७

प्रतापादित्य को नीलकण्ठ को दस सहस्र रुपया देना स्मरण आ गया। वह मन में विचार करने लगा कि उसे नीलकण्ठ को निःशेष करना पड़ेगा। वह ही उसके रहस्य को जानता है।

वह अपनी रानियों से छुट्टी ले सीधा मां के आगारों में जा पहुंचा। वहां जाते ही मां से पूछने लगा, "मां ! क्या मेरे पिताजी की भी हत्या हुई थी ?"

"किस पिता की वात पूछते हो ? मैंने तुम्हें बताया है कि एक तुमको जन्म देनेवाले पिता हैं और दूसरे तुम्हें राज्य देनेवाले पिता हैं।"

"मां ! मैं राज्य देनेवाले पिता की वात पूछ रहा हूं।"

"तो सुनो। तुम अब सज्ञान हो रहे हो। इस कारण तुम्हें बताती हूं। उसे महामात्य वीरभद्र ने विप देकर मरवाया था। विप वीरभद्र ने लाकर दिया था और मैंने उनको खिलाया था। मुझे उनसे सदा भय लगा रहता था कि वह मेरी हत्या कर देंगे। वह तुम्हारे जन्म के रहस्य को जान गए थे।"

"और मां, तुम यह जानती थीं क्या कि वह विप है ?"

"मैं अपने पति के उपरान्त महारानी बनी थी। तुम्हारे पन्द्रह वर्ष की आयु के होने तक मैं राज्य करती रही हूं। इस कारण मैं महाराज के निधन की वात जानती थी, परन्तु प्रजागण से बहुत बातें गुप्त रखनी पड़ती हैं। साथ ही किसीने वीरभद्र की हत्या कर उसके पापों का बदला उसको दिया था। यह किसने किया, मैं नहीं जानती।"

प्रतापादित्य चुप रहा और रात वह पद्मावती के शयनागार में गया तो वह पलंग से नीचे उतरकर खड़ी हो गई।

"क्यों, कहां भागी जा रही हो ?"

"नहीं, नहीं, महाराज ! मैं आपसे वार्तालाप के लिए पलंग उपयुक्त स्थान नहीं समझती।"

"और कौन-सा स्थान उपयुक्त समझती हो ?"

"यह चौकी।" पद्मावती ने समीप रखी चौकी की ओर संकेत कर कहा।

"परन्तु यहां तो एक ही है।"

"मैं खड़ी रहूंगी। आप आज्ञा करिए।"

"मैं तो इस पलंग पर महारानी की संगत का रस लेने आया हूं।"

"उसके लिए मैंने नरेन्द्रप्रभा को नियुक्त कर रखा है।"

"परन्तु वह अब दूसरे बच्चे का पेट में पालन करने लगी है।"

"यह कोई कारण नहीं कि आप मेरी शान्ति भंग करने चले आए।"

"अच्छा, एक बात बताओ।"

"क्या ? पूछिए !"

"यही कि आपको यह समाचार कहां से मिला है कि मेरे पिता की हत्या हुई है ?"

"तो आपकी माताजी क्या कहती हैं ?"

"वह कह रही हैं कि निश्चय से बताया नहीं जा सकता। वह बीमार होकर मरे थे। परन्तु वह बीमार किस कारण हुए थे, इस विषय में सन्देह किया जाता है।"

"तो मैं बताती हूं। मेरी रुचि इस विषय में यह है कि मैं विधवा बन रहना नहीं चाहती। इस कारण मुझे किसी प्रकार यह षड्यन्त्र पता चला है कि आपकी हत्या की जानेवाली है। कुछ लोग यह षड्यन्त्र कर रहे हैं और समझते हैं कि आपका लड़का अभी अल्पवयस्क है। इस कारण आपके निधन पर मुझे नाम की रानी बना स्वयं राज्य करेंगे।"

"और नरेन्द्रप्रभा को रानी नहीं बनाएंगे ?"

"नहीं। वह आपकी अविवाहिता पत्नी है और फिर वैश्य जाति की है। उसे कोई हत्यारा अपने रनिवास में रखने की इच्छा कर रहा है।"

"तो रानीजी, मुझे आप यह बता दें कि इस षड्यन्त्र में मुख्य व्यक्ति कौन है ?"

"आप यदि मेरा नाम किसीको न वताएं, तो वता सकती हूं।"

"नहीं वताऊंगा।"

"वह आपके महामात्य नीलकण्ठ हैं।"

प्रतापादित्य को स्मरण आ गया कि उसने कहा था कि वीरभद्र की हत्या करनेवाले के अतिरिक्त उस हत्या की वात कोई नहीं जानता। इसका अर्थ प्रतापादित्य समझता था। वह नीलकण्ठ को एक चतुर हत्यारा समझता था।

अतः उसने उसी समय ताली वजाई तो महारानी की दासी भीतर आ गई। महाराज ने आज्ञा दी, "मेरे सेवक रामनारायण को वुला लाओ।"

रामनारायण महाराज का निजी सेवक था। वह आया तो प्रतापादित्य ने कहा, "सेनाध्यक्ष को पत्न लिखकर कहो कि मेरे आगार में मुझसे मिले।"

रामनारायण गया तो पद्मावती ने कहा, "मेरा निवेदन है कि आप अपने आगार में जाकर छुपकर देखिए कि रामनारायण के पत्र पर कौन आता है और आकर वह क्या करता है।"

प्रतापादित्य को वात समझ आ गई। यद्यपि पद्मावती ने वताया नहीं था कि उसकी सूचना का स्रोत क्या है। उसने केवल संकेत किया था कि उसको अपने पति के जीवन का भय है। इसपर भी उसका कहने का ढंग ऐसा था कि मानो वह किसी गम्भीर रहस्य को जानती है और वह उसकी रक्षा करना चाहती है।

अतः वह उसी समय उठा और रामनारायण का पत्न एक प्रतिहार के हाथ भेजते ही वहां जा पहुंचा। रामनारायण ने वताया कि पत्न प्रतिहार के हाथ भेज दिया गया है। प्रतापादित्य ने उसे कह दिया, "देखो राम-नारायण ! तुम यहां वैठो और जव सेनाध्यक्ष आएं तो उन्हें आदरसहित विठाना और कहना कि मैं महारानीजी के कक्ष में गया हूं। वहां कहला भेजा है और मैं शीघ्र ही आनेवाला हूं।

"और देखो, मैं इस पर्दे के पीछे हूं। तुम चिन्ता मत करो। मैं समीप ही हूं और यदि किसी प्रकार की शंकित स्थिति हुई तो मैं तुरन्त प्रकट हो जाऊंगा।"

रामनारायण कमरे के बीचोबीच खड़ा रहा और प्रतापादित्य आगार के पिछले द्वार के आगे लटके पर्दे के पीछे छुपकर खड़ा हो प्रतीक्षा करने लगा। उसे कुछ अधिक देर तक प्रतीक्षा करनी नही पड़ी। सेनाध्यक्ष का निवास-स्थान राज्यप्रासाद के बगल मे ही था।

सेनाध्यक्ष स्वयं आया और रामनारायण से पूछने लगा, "कहा है महाराज ?"

"श्रीमान् !" रामनारायण ने उत्तर देते हुए कहा, "महाराज बड़ी रानी के आगारों मे गए हुए है।"

"और मुझे वहा क्यों नही बुलाया ?"

"यह मैं सेवक कैसे जान सकता हू ?"

उसी समय नीलकण्ठ हाथ मे खड्ग लिए हुए वहा आ पहुचा। उसने कहा, "इसे यहां मत जाने दो।" नीलकण्ठ के कहने का अभिप्राय यह था कि आगार के बाहर सैनिक खडे हैं और यदि वह महाराज के पास गया तो वहा सूचना दे देगा और प्रतापादित्य भाग भी सकता है।

प्रतापादित्य पर्दे के पीछे खडा देख और सुन रहा था। सेनाध्यक्ष ने कहा, "महामात्य ! उनको बाहर खड़े नहीं रखना चाहिए। अन्य सेवकों को सन्देह होने लगेगा।"

नीलकण्ठ द्वार तक गया और द्वार खोल बाहर खड़े पांच सैनिकों को भीतर कर बोला, "इधर एक कोने मे छिप जाओ।"

सेनाध्यक्ष ने कहा, "कोने मे नही। उस पर्दे के पीछे।"

सैनिक उधर ही लपके जिधर प्रतापादित्य छुपा हुआ था। प्रतापादित्य तो सैनिकों के आते ही वहा से भाग गया था। वह द्वार था बाहर छज्जे पर जाने का। प्रतापादित्य छज्जे पर गया और वहा से नीचे भूमि पर कूद गया।

अब सैनिक उसी पर्दे के पीछे जा खडे हुए थे। रामनारायण आनेवालों की गतिविधिया देख सब समझ गया था। उसे अपनी जान का भय लग रहा था। उसने महामात्य नीलकण्ठ को कहा, "श्रीमान् ! आपका काम तो मुझे अतिप्रिय है। इससे आपको मुझसे भय नही करना चाहिए। मैं आपके ही विचार का व्यक्ति हू।"

नीलकण्ठ ने मुस्कराते हुए पूछा, "तुम किस कारण नाराज़ हो ?"

"श्रीमान् ! मुझे वेतन मिले दो वर्ष हो चुके हैं। निर्वाह-भर का ही छोटी रानी देती हैं। उससे कुछ काम नहीं चलता।"

नीलकण्ठ ने कुछ विचार किया और कहा, "अच्छा, जाओ। परन्तु एक सैनिक तुम्हारे साथ जाएगा। तुम केवल यह बताना कि सेनाध्यक्ष प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

नीलकण्ठ समझ रहा था कि काम शीघ्र और चुपचाप होना चाहिए। इस कारण वह वहां प्रतीक्षा में समय व्यर्थ गंवाना नहीं चाहता था। इसी कारण रामनारायण पर विश्वास न करते हुए भी उसे भेजने पर विवश हो गया। नीलकण्ठ ने ताली बजाई तो सैनिक पर्दे के पीछे से बाहर आ गए। नीलकण्ठ ने एक को कहा, "शूरसेन ! तुम इस सेवक के साथ जाओ और महाराज को चुपचाप यहां ले आओ।"

वह सैनिक जाने लगा तो नीलकण्ठ ने आंख के संकेत से समझाने का यत्न किया कि काम वहां ही हो जाना चाहिए। सैनिक बात ठीक प्रकार नहीं समझ सका। परन्तु वहां खड़े हो आज्ञा के स्पष्टीकरण का अवसर नहीं था।

रामनारायण गया तो शूरसेन उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। शेष सैनिक पुनः पर्दे के पीछे चले गए।

कुछ ही क्षण उपरान्त उधर से हल्ला सुनाई दिया जिधर रामनारायण और सैनिक शूरसेन गए थे। इस हल्ले को सुन नीलकण्ठ और सेनाध्यक्ष एक-दूसरे का मुख देखने लगे। नीलकण्ठ सेनाध्यक्ष से अधिक सूझबूझ रखनेवाला व्यक्ति था। उसने कह दिया, "दादा, भागो ! अब हमारी जान का भय है।"

सेनाध्यक्ष ने अपने खड्ग को म्यान से निकाल लिया और शेष चार सिपाहियों को साथ ले आगार से भागा। महामात्य उनके पीछे-पीछे था।

८

प्रतापादित्य खिड़की से कूदा तो राज्यप्रासाद के सुभट्टों ने, जो पहरा

दे रहे थे, महाराज के आगारों से किसीको कूदते देख लिया और उनमें से दस-बारह सुभट्ट इस भागनेवाले को घेरकर खड़े हो गए, परन्तु ज्योंही उन्होंने महाराज को पहचाना तो सबके खड्ग नीचे झुक गए।

प्रतापादित्य ने प्रकाश में जा अपने-आपको भली भांति दिखाकर कहा, "मेरे साथ आओ।"

इतना कह महाराज इन सब लगभग एक दर्जन सुभट्टों को लिए हुए अपने आगारों की ओर चल पड़ा। मार्ग में खड़े सुभट्टों को वह सतर्क करता चला गया। अभी प्रतापादित्य अपने आगारों से कुछ अन्तर पर ही था कि उसने रामनारायण को एक सैनिक के साथ रानी पद्मावती के आगार की ओर जाते देखा। वह अपने सैनिकों में से दो को बोला, "रामनारायण को छुड़ाओ।"

दो सैनिक भागकर रामनारायण और उसके साथ जाते सैनिक का मार्ग रोककर खड़े हो गए। दोनों ओर से खड्ग निकल आए और युद्ध होने लगा। यह तो रामनारायण के साथ जाते सैनिक ने हल्ला किया था, जिसमें उसके साथी उसकी सहायता के लिए आ जाएं।

परन्तु नीलकण्ठ बहुत ही समझदार व्यक्ति था। वह समझ गया कि निशाना चूक गया है। जब सेनाध्यक्ष बैठकघर से निकल राज्यप्रासाद के द्वार की ओर भागा तो वह रानी पद्मावती की ओर भागा। उसको समझ आया कि उस पूर्ण प्रासाद में यदि कोई सहायक हो सकता है, तो वह पद्मावती ही हो सकती है।

रामनारायण के साथ आता हुआ सैनिक राज्यप्रासाद के दो सुभट्टों के साथ युद्ध कर रहा था और नीलकण्ठ समीप से निकल पद्मावती के आगारों की ओर भागा। रामनारायण समझ गया कि वह किधर जा रहा है, परन्तु वह निःशस्त्र था। इस कारण वह महामात्य, जिसके हाथ में नग्न खड्ग था, से कुछ अन्तर पर ही खड़ा रहा। उस कक्ष में केवल दासियां ही थीं। दोनों रानियों के आगार साथ-साथ थे। महामात्य तो पद्मावती के आगारों की ओर भागा जा रहा था। एकाध दासी ने नग्न खड्ग लिए महामात्य को बड़ी रानी के आगार में घुसते देखा, तो चीखें मार शोर करने लगी।

पद्मावती भी बाहर से हल्ला होता सुन आगार से निकली तो सामने महामात्य को खड्ग लिए आते देख प्रश्न-भरी दृष्टि में महामात्य की ओर देखने लगी। महामात्य ने घबराते हुए कहा, "रानी, बचाओ!" वह अपने पीछे सिपाहियों के आने का शोर सुन रहा था।

पूर्व इसके पद्मावती कुछ कहे कि महामात्य उसके आगार में घुस गया। रामनारायण महामात्य के पीछे-पीछे आता हुआ कह रहा था, "यह हत्यारा है! पकड़ो! पकड़ो!"

पद्मावती ने हाथ खड़ा कर संकेत से रामनारायण को रोका और फिर उसके पीछे महाराज को राज्यप्रासाद के सुभट्टों के साथ आते देख उनको भी हाथ खड़ा कर रोकने लगी।

प्रतापादित्य ने जब अपने आगारों के बैठकघर से नीलकण्ठ और सेनाध्यक्ष को भागते देखा तो अपने कुछ सुभट्टों को सेनाध्यक्ष को पकड़ने के लिए कह तीन-चार सुभट्ट ले महामात्य के पीछे भाग खड़ा हुआ। इनके पद्मावती के आगारों के बाहर पहुंचने से पहले नीलकण्ठ पद्मावती के आगार में जा चुका था।

पद्मावती ने कहा, "महाराज! अब इन सैनिकों की आवश्यकता नहीं। इनको यहीं खड़ा कर दीजिए और आप एक खड्ग ले मेरे साथ आइए। मैं विद्रोही को आपके हाथ में दे दूंगी।"

महाराज को समझने में एक क्षण ही लगा। वह समझ गया कि पद्मावती भी इस षड्यन्त्र की अंग रही है, परन्तु किसी कारण से उसको बचाने पर उद्यत हो गई थी।

प्रतापादित्य ने एक सुभट्ट से खड्ग लिया और पद्मावती के आगार में पहुंच गया। प्रतापादित्य को विश्वास था कि वह अकेला महामात्य से अधिक कुशल तलवार चलानेवाला और शरीर से भी अधिक सुदृढ़ है। इस कारण वह निःशंक हो पद्मावती के पीछे-पीछे उसके आगार में जा पहुंचा।

महामात्य आगारों के बैठकघर के बीचोबीच नग्न खड्ग लिए खड़ा था। पद्मावती ने कहा, "काका! खड्ग नीचे कर लो। बचने का अब यह उपाय नहीं।"

महामात्य भी यही समझता था कि बातचीत से बात सुलझ सकती है। पद्मावती ने सीधी बात प्रतापादित्य से कही। उसने कहा, "महाराज ! महामात्य को क्षमा कर दीजिए।"

"क्यों ?" प्रतापादित्य का प्रश्न था।

"यह इस कारण कि इनके साथ मेरी माताजी को और कदाचित् मुझे भी फांसी चढ़ना पड़ेगा।"

"तो यह बात है ?"

"मैं भी इस षड्यन्त्र का अंग थी, परन्तु वह अपने प्रयोजन से। वह प्रयोजन मैंने सिद्ध कर लिया है। मेरा आग्रह है कि महामात्य को क्षमा कर दिया जाए।"

महामात्य को प्रतापादित्य ने आज्ञा के भाव में कहा, "खड्ग महारानी को सौंप दो !"

महामात्य ने खड्ग दोनों हाथों पर रख पद्मावती के सामने उपस्थित कर दिया। उसने खड्ग ले लिया और कहा, "मैं समझती हूं कि अभी महामात्य इसी आगार में बन्दी रहेंगे, जब तक बाहर शान्ति नहीं हो जाती। इनको यहां से कहीं जाना नहीं चाहिए।"

"और तुम ?" प्रतापादित्य सर्वथा सज्ञाहीन हो रहा था। वह समझ नहीं सका था कि पद्मावती और महामात्य का परस्पर क्या सम्बन्ध है। वह उसे असती समझने लगा था।

पद्मावती ने कहा, "महाराज ! चलिए। मैं इनकी रक्षा का प्रबन्ध दासियों के हाथ में देकर आपके साथ इनके दूसरे साथियों की टोह लेने चलती हूं।"

पद्मावती के कक्ष में छ-सात दासियां थीं। सबको वहां खड़ा कर पद्मावती बोली, "महामात्य की जान का भय है। इस कारण इनको यहां से बाहर मत जाने देना।"

फिर पद्मावती रामनारायण की ओर देख बोली, "रामनारायण ! तुम भी यहां रह इनकी देखभाल करो।"

इतना कह वह महाराज के साथ आगार से निकल उधर चल पड़ी, जिधर हो-हल्ला सुनाई दिया था। उधर भी अब शान्ति हो चुकी थी।

बाहर महाराज प्रतापादित्य के आगारों से इधर ही उस सैनिक का शव पड़ा था, जो रामनारायण के साथ पद्मावती के आगार की ओर आ रहा था। आगे चलकर महाराज के बैठकघर से कुछ आगे निकलकर सेनाध्यक्ष का और उसके साथ सैनिक तथा तीन-चार राज्यप्रासाद के सुभट्टों के शव थे। वहां राज्यप्रासाद के सुभट्टों का नायक और उनके साथ कुछ सैनिक महाराज के लौटने की प्रतीक्षा कर रहे थे। महाराज के आने पर नायक ने कहा, "महाराज ! युद्ध करते हुए ये मारे गए हैं।"

महाराज ने देखा और शवों में सेनाध्यक्ष का शव देखकर कह दिया, "बड़ी महारानी के कक्ष की रक्षा करो। मैं तनिक अपने बैठकघर को देख वहां आता हूं।"

नायक अपने साथ कुछ सैनिकों को ले पद्मावती के आगारों की ओर चल पड़ा। शेष सुभट्ट वहां पर पड़े शवों को उठा मार्ग साफ करने लगे और महाराज प्रतापादित्य पद्मावती के साथ अपने आगारों में पहुंच गए। वहां नरेन्द्रप्रभा भी अपनी दो दासियों के साथ बैठी भय से पसीना-पसीना हो रही थी।

महाराज और पद्मावती को देख, साहस पकड़ बोली, "भगवान का धन्यवाद है कि आप ठीकठाक हैं।"

प्रतापादित्य नरेन्द्रप्रभा को देख हंस पड़ा। वह उससे पूछने लगा, "छोटी रानीजी यहां कब आई हैं ?"

"मैं सो गई थी कि बाहर शोर सुनाई दिया। इस कारण वहां मार्ग में युद्ध होता देखा तो आपका सुख-समाचार लेने इस आगार में चली आई। मैं यही चिन्ता कर रही थी कि आप कहां हैं कि आप बड़ी बहनजी के साथ आ पहुंचे हैं।"

"मैं समझता हूं कि सब कुशल-मंगल है। बैठो, पद्मारानी ! मैं तुमसे बात समझने के लिए यहां आया हूं।"

तीनों वहां बिछी मसनद पर बैठे तो पद्मावती ने षड्यन्त्र का ताना-बाना सुना दिया।

उसने कहा, "महाराज ! मेरे बार-बार कहने पर भी मेरे माता-पिता आपकी दूसरी रानी के कारण मेरा मान और जान भय में समझते थे और

वे जब से यह बहन यहां आई है, मेरा जीवन इनके रहते सुरक्षित नहीं समझते थे। परन्तु इन जैसी अलौकिक सुन्दरी की हत्या करने के लिए कोई तैयार नहीं होता था। हर कोई यह समझता था कि इनके सौन्दर्य के भोग का अधिकार उसको होना चाहिए।

"तीन वर्ष की खींचातानी के उपरान्त यह निश्चय हुआ कि बहन नरेन्द्रप्रभा के स्थान पर आपको यहां से विदा कर मुझे यहां की राज्याधिकारिणी बना दिया जाए, मेरे लड़के को यहां का महाराज और मुझे राजमाता का पद देकर बहन नरेन्द्रप्रभा को राज्य के दो उच्चाधिकारियों की सांझी भोग-सामग्री बनाया जाए।

"मैं इस सब षड्यन्त्र को जानती थी और यह यत्न कर रही थी कि आपको समय पर अचेत कर आपकी जान बचा लूं।

"मैंने अपने माता-पिता से दगा किया है और आपकी सहायता की है। इस कारण मैं अपने व्यवहार का आपसे तो यह मूल्य चाहती हूं कि मेरे माता-पिता और महामात्य की जान बख्शी जाए।"

"ठीक है। इनकी जान बख्शी जाएगी, परन्तु इनको या तो राज्य से निकल जाना होगा अन्यथा जीवन-भर बन्दीगृह में व्यतीत करना होगा।"

"यह उनसे ही पता कर लिया जाए कि वे क्या चाहते हैं। इसमें मैं किसी प्रकार का हस्तक्षेप करना नहीं चाहती।"

"और रानीजी को मेरी रक्षा करने का क्या पुरस्कार दिया जाए ?"

"मैं वराह भगवान के मन्दिर में देवदासी बन रहने की लालसा कर रही हूं। वह मन्दिर आपकी माताजी की प्रेरणा से बना था। मुझे वहां साध्वी बन रहने की स्वीकृति मिलनी चाहिए।"

"पद्मा, यह पुरस्कार तो बहुत अधिक है। यह मैं देने में अपने को असमर्थ समझता हूं।"

"तो महाराज ! इससे कम क्या देना चाहते हैं ?"

"यह मैं विचारकर बताऊंगा। मैं समझता हूं कि हमें अब महामात्य की सुध लेनी चाहिए। उस दुष्ट को मैंने गुरु मान उच्च पद पर आसीन किया था और उसने मुझसे ही द्रोह करने का यत्न किया है। उसके विषय में हम वहां चलकर ही निश्चय करेंगे।"

बैठकघर से निकल बाहर खड़े सुभट्टों के नायक को सम्बोधन कर प्रतापादित्य ने कहा, "रघुवीर ! तुरन्त दस सुभट्ट भेज बड़ी महारानी के माता तथा पिता को मेरे पास ले आओ। देखो, वे भाग न जाएं।"

रघुवीर नायक ने तुरन्त दस सुभट्टों को महारानी के मायके भेज दिया। प्रतापादित्य पद्मावती के आगारों में पहुंचा तो महामात्य को भूमि पर हाथ-पांव बंधे हुए लेटे देख प्रश्न-भरी दृष्टि से रामनारायण की ओर देखने लगा। पद्मावती और नरेन्द्रप्रभा भी महाराज के साथ-साथ थीं। दोनों रानियां महामात्य को इस प्रकार वहां पड़े देख हंस पड़ीं। रामनारायण ने बताया, "महाराज ! आपके यहां से जाते ही यह यहां से भागने लगा तो इन देवियों की सहायता से मैं इसे रोक सका हूं। रोकने के लिए यह आवश्यक हो गया था कि इसके हाथ-पैर बांध दिए जाएं। महारानी जी की दासियों ने यह शौर्य का काम किया है।"

प्रतापादित्य ने मुस्कराते हुए पूछा, "और रामनारायण ! तुमने क्या किया है ?"

"महाराज ! मैं मनुष्यों की लड़ाकू श्रेणी, मेरा अभिप्राय है कि क्षत्रिय वर्ण का नहीं हूं। कायस्थ होने के नाते मैं घटनाओं को देख-देख रस लेने-वालों में ही हूं।"

प्रतापादित्य हंस पड़ा और महामात्य नीलकण्ठ की ओर देखकर पूछने लगा, "गुरुजी ! यह आपको क्या सूझी थी ?"

"एक बागी शिष्य को सन्मार्ग दिखाने का यत्न किया था।"

"परलोक-गमन कराकर ?"

"यह सेनाध्यक्ष की योजना थी। मैं तो केवल आपसे आपकी दूसरी रानी को पृथक् करने का विचार रखता था, परन्तु सेनाध्यक्ष की उससे अपने घर को उज्ज्वल करने की योजना थी और सब गड़बड़ घोटाला कर दिया है।"

"परन्तु गुरुजी महाराज ! जब आप सेनाध्यक्ष के साथ राज्यप्रासाद में आए थे तब तो आप सेनाध्यक्ष की पूर्ण योजना में सहायक बन रहे थे ?"

"हां, महाराज ! वह अपने साथियों की सम्मति से सहमत होने की विवशता थी। इसपर भी मेरी इच्छा उतनी मात्र ही थी।"

इसपर नरेन्द्रप्रभा ने पूछ लिया, "और गुरुजी ! मैंने आपका क्या बिगाड़ा था, जो आप मेरे विरुद्ध हो रहे थे ?"

"तुम वैश्य की लड़की और एक वैश्य की भार्या एक क्षत्रिय को पतित कर रही थीं।"

"तो यह अपराध था ?"

"हां, रानीजी ! यह राज्य और राष्ट्र के लिए घातक था।"

"परन्तु मैंने तो सुना है कि धर्मशास्त्र में स्त्री की कोई जाति अथवा धर्म नहीं माना जाता !"

"परन्तु यह भूमि तो है। एक निकृष्ट भूमि पर डाला बीज विषाक्त भी हो सकता है।"

"तो मैं निकृष्ट भूमि हूं ?"

"मेरा यही विचार था।"

"और अब क्या विचार है ?" प्रतापादित्य ने पूछ लिया।

"महाराज ! विचार इस प्रकार नहीं बदलते। इसके लिए तो विचारित वस्तु की परीक्षा करनी होती है।"

"तो महाराज !" नरेन्द्रप्रभा ने कह दिया, "इस महानुभाव को मेरी परीक्षा करने दीजिए।"

"पहले गुरुजी महाराज की परीक्षा इनका शिष्य कर ले, तब इनको किसी दूसरे की परीक्षा करने का अवसर भी मिल जाएगा।"

महाराज और महारानियां चौकियों पर बैठ गए थे। दासियां आगार से बाहर चली गई थीं और नीलकण्ठ हाथ-पांव से बंधा हुआ सामने भूमि पर पड़ा था। महाराज ने उससे पूछ लिया, "गुरुजी ! यह बताइए कि आपके विचार के कौन-कौन लोग थे और आपके इस षड्यन्त्र में कौन-कौन लोग सम्मिलित थे ?"

"महाराज ! पूर्ण सेना और प्रायः मन्त्रिमण्डल के सब सदस्य। साथ ही नगर के बहुत-से धनी-मानी लोग। सबके सब आपकी अविवाहिता रानी के विरुद्ध थे। यह ठीक था कि सब लोग इतनी दूर तक जाना नहीं चाहते थे, जितनी दूर तक सेनाध्यक्ष चाहता था। मैं समझता हूं कि वह अपनी करनी का फल भोग चुका है।"

"हां, वह मारा गया है।" प्रतापादित्य ने कहा। वह समझ रहा था कि पूर्ण योजना का कर्ताधर्ता तो महामात्य था और वह दण्ड देने योग्य है, परन्तु वह पद्मावती को वचन दे चुका था।

९

वे सैनिक, जो पद्मावती के माता-पिता को वन्दी बनाने के लिए भेजे गए थे, खाली हाथ लौटे। उनके पद्मावती के पिता रमाकान्त मन्त्री के घर पहुंचने से पहले ही घर के सब प्राणी घर को ताला लगा लापता हो चुके थे। उनको योजना की असफलता की सूचना राज्यप्रासाद के सैनिकों के वहां पहुंचने से पहले ही मिल चुकी थी।

नीलकण्ठ को अभी वन्दीगृह में भेजा गया था और यह विचार था कि उसको मन्त्रिमण्डल के निर्णयानुसार ही मुक्त किया जाए।

अगले दिन मन्त्रिमण्डल की वैठक हुई तो पता चला कि एक मन्त्री के अतिरिक्त अन्य सब मन्त्रियों का महाराज की हत्या में आशीर्वाद था। यह रहस्योद्घाटन एक मन्त्री विष्णुदत्त ने ही किया। उसने कहा, "सब मन्त्री पृथक्-पृथक् उससे मिलकर उसे समझाने का यत्न करते रहे हैं कि देश में स्वस्थ प्रथाओं को चालू रखने के लिए दो में से एक बात करनी होगी। एक यह कि महाराज की अविवाहिता को निकाल दिया जाए अथवा महाराज को राज्य से छुट्टी दी जाए।

"महाराज को छुट्टी देने का अर्थ मैं यह नहीं समझा था कि इसे हत्या से किए जाने का विचार है। यदि मुझे इस बात का पता चल जाता तो मैं महाराज को इस बात की सूचना अवश्य दे देता। अब मैं कल रात की पूर्ण कार्यवाही को जान इसी परिणाम पर पहुंचा हूं कि महाराज को कार्यक्षेत्र से निकाल देने का अभिप्राय उनकी हत्या से था। मैं समझता हूं कि महाराज को पूर्ण मन्त्रिमण्डल को छुट्टी दे नया मन्त्रिमण्डल नियोजित करना चाहिए।"

इसपर एक मन्त्री ने बात बीच में काटकर कहा, "और पण्डित विष्णुदत्त को पुनः मन्त्री नियुक्त किया जाए ?"

"मैंने यह नहीं कहा। न ही महाराज को यह सम्मति दी है कि आपमें से कोई न रखा जाए। इसपर भी मेरी सम्मति है कि हम सब अयोग्य सिद्ध हुए हैं।

"अन्यथा मेरा आप सबसे यह प्रश्न है कि आप महाराज की अविवाहिता के विरुद्ध क्यों थे? उसने क्या अपराध किया है?"

विष्णुदत्त कहता-कहता कुछ क्षण के लिए रुका और जब किसी मन्त्री ने कोई उत्तर नहीं दिया, तो उसने आगे कहा, "आप महानुभावों का मौन रहना ही सिद्ध करता है कि आप सब इस षड्यन्त्र को ठीक समझते थे, और यह बात तो निर्विवाद है कि मन्त्रिमण्डल के दो मन्त्री इसमें सर्वथा लिप्त थे।"

महाराज प्रतापादित्य ने विष्णुदत्त की सम्मति को ठीक ही माना। इसपर विष्णुदत्त ने स्वत: मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र दे दिया।

महाराज ने तुरन्त ही उसे देश का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त कर दिया। यद्यपि मन्त्रिमण्डल के अधिकांश सदस्य इसे पसन्द नहीं करते थे, परन्तु किसीको महाराज का विरोध करने का साहस नहीं हुआ।

इसके उपरान्त नीलकण्ठ के विषय में विचार उपस्थित हुआ। महाराज ने कहा, "नीलकण्ठ निश्चित रूप से इस षड्यन्त्र में मुख्य था। इसपर भी उसकी पूर्वसेवाओं का विचार कर मैं उसे एक शर्त पर क्षमा कर सकता हूं। या तो वह आजीवन बन्दीगृह में रहे अथवा वह देश छोड़ किसी विदेश में चला जाए। मैंने उससे पुछवाया है। बन्दीगृह से उसका उत्तर अभी नहीं आया।"

मन्त्रिमण्डल ने महाराज की बात को स्वीकार कर लिया और यह नीलकण्ठ पर छोड़ दिया गया कि वह अपने भावी जीवन के बारे में निर्णय करे।

मन्त्रिमण्डल की बैठक के उपरान्त बन्दीगृह से सूचना आई कि नीलकण्ठ बन्दीगृह के सैनिकों को भारी घूस देकर भाग गया है।

इसपर महाराज की आज्ञा से यह राज्य-भर में घोषणा कर दी गई कि भूतपूर्व महामात्य को देश से निकाल दिया गया है। यदि वह कहीं राज्य के भीतर पाया गया तो फांसी पर लटका दिया जाएगा।

मन्त्रिमण्डल में प्रथम विवाद इस विषय पर हुआ कि महामात्य कौन हो। सब मन्त्री अपने को इस पद के योग्य समझते थे। इस कारण एक-एक कर सब मन्त्री महाराज से मिलने आए और अपने को महामात्य-पद के लिए उपयुक्त व्यक्ति सिद्ध करने का यत्न करते रहे।

महाराज की इच्छा थी कि विष्णुदत्त को ही महामात्य नियुक्त किया जाए। उन्होंने विष्णुदत्त को राज्यप्रासाद में बुलाकर पुनः मन्त्रिमण्डल में आ जाने की सम्मति दी। विष्णुदत्त ने मन्त्रिमण्डल में आने से इनकार करते हुए कहा, "मेरे लिए अभी मन्त्रिमण्डल में आना उचित नहीं, और मैं यह भी निवेदन करना चाहता हूं कि मैं आपके मन्त्रियों में से एक भी मन्त्री यहां रहने नहीं दूंगा।"

"किसलिए?" महाराज का प्रश्न था।

"यह इसलिए कि ये सबके सब बेईमान हैं और मैं मुख्य न्यायाधीश होते हुए इन सबको ऐसे उठा दूंगा, जैसे सूर्य निकल आने पर कोहरा दूर हो जाता है।"

"तो किसको महामात्य नियुक्त करूं?"

"जिसको आप सबसे पहले हटाना चाहते हैं।"

प्रतापादित्य हंस पड़ा। वह हंसते हुए बोला, "सब ठीक है। पण्डित इन्द्रमणि कैसे रहेंगे?"

"मुझे अपना काम आरम्भ करने के लिए वह एक अच्छे महामात्य सिद्ध होंगे।"

जब से महाराज की हत्या करने का प्रयास किया गया था, नरेन्द्रप्रभा अपनी स्थिति पर बहुत ही गम्भीर विचार में मग्न थी। मन्त्रिमण्डल के झगड़ों की भी चर्चा महाराज अपनी रानियों से करते थे। एक दिन खुलकर बातचीत करने का अवसर मिला। महाराज ने बताया, "हमने एक पण्डित इन्द्रमणि को राज्य का महामात्य नियुक्त किया है।"

पद्मावती को इन्द्रमणि के विषय में कई बातें ज्ञात थीं। इस कारण उसने ही सबसे पहले कहा, "यह निर्वाचन ठीक प्रतीत नहीं होता।"

"यह कैसे कहती हो?" प्रतापादित्य ने पूछ लिया।

"वह चरित्र का शिथिल है और ब्राह्मण होते हुए भी राजा-रईसों की

भांति रहने की इच्छा करता रहता है। वर्तमान मन्त्रिमण्डल में विष्णुदत्त सबसे अच्छा व्यक्ति था। इसपर भी अवगुण तो उसमें भी हैं। परन्तु महाराज ! सर्वदा गुणवान तो आज कश्मीर में किसी व्यक्ति को ढूंढ़ निकालना प्रायः असम्भव ही है।"

"क्या दोष देखती हैं रानीजी विष्णुदत्त में ?"

"वह वैष्णव मतानुयायी है। इस कारण वह जब भी भूल करेगा, दया की अति करने में करेगा। अनधिकारी पर दया करना अधिकारी के साथ अन्याय होता है।"

प्रतापादित्य ने मुस्कराते हुए कहा, "जैसे आपके पिता रमाकान्तजी पर दया की गई है ?"

"परन्तु उनपर दया किसने की है ? वह तो अपनी चतुराई से बच गए प्रतीत होते हैं। मुझे विश्वस्त सूत्रों से पता चला था कि जिस समय सेनाध्यक्ष इत्यादि इधर अपना कुकृत्य करने आ ही रहे थे उस समय उनके गुप्तचर राज्यप्रासाद के चारों ओर यह देखने के लिए खड़े थे कि उनके साथियों की कार्यवाही सफल होती है अथवा नहीं और उस दिन के अभियान की असफलता का ज्ञान सबसे पहले उनको ही हुआ था।"

इसपर नरेन्द्रप्रभा ने कह दिया, "तो हम भी क्या समय रहते यहां से चल दें ?"

"हां, यदि अनुकूल मन्त्रिमण्डल न बन सके तो।"

"नहीं, रानी बहन ! मैं इस बात के पक्ष में नहीं हूं। मैं दो बातें चाहती हूं। एक यह कि हमें प्रजा से सीधा सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए और साथ ही न्यायाधीश को मन्त्रियों से ऊंचा पद प्राप्त होना चाहिए। मुझे पण्डित विष्णुदत्त एक सात्विकी बुद्धि का व्यक्ति प्रतीत हुआ है। उसे तनिक खुली छुट्टी दी जाए तो राज्य-परिवार की वाह-वाह होने लगेगी और फिर मन्त्रिमण्डल निस्तेज हो जाएगा।"

मन्त्रिमण्डल में भी राज्य-परिवार की चर्चा होती रहती थी। एक दिन यह समस्या उपस्थित हुई कि जब तक राज्य-परिवार के विषय में प्रजा के मन में सम्मान और प्रतिष्ठा नहीं होती, तब तक राज्य रह नहीं सकता।

"इस स्थिति में, जो आज राज्य-परिवार की देश में है, क्या किया जाए ?" इन्द्रमणि ने विचार उपस्थित करनेवाले से पूछ लिया।

"स्थिति वही है, जो कुछ मास पूर्व होनेवाली दुर्घटना से पहले थी और उसकी चिकित्सा भी वही है। या तो छोटी रानी को किसी अज्ञात स्थान पर किसी विदेश में भेज दिया जाए अथवा राजा बदल दिया जाए।"

प्रतापादित्य ने कहा, "देखिए श्रीमान् ! मेरा प्रजा से सम्पर्क मेरी रानियों के द्वारा नहीं। उनका सम्पर्क यदि कुछ रहा है तो वह छोटी रानी के शारीरिक सौन्दर्य के कारण रहा है। देखनेवाले उसे देख गद्‌गद हो जाते हैं। परन्तु इसे मैं किसी प्रकार भी स्थायी सम्पर्क नहीं मानता। स्थायी सम्पर्क मन्त्रियों के द्वारा ही प्रजा के साथ राजा का होता है। यदि प्रजा में असन्तोष है तो यह मन्त्रिमण्डल की अपनी अयोग्यता के कारण है। जहां तक मुझे विदित है, प्रायः सब मन्त्रियों का सम्बन्ध अपनी विवाहिता पत्नी के अतिरिक्त स्त्रियों से भी है, तो फिर मैं ही इस विषय में दण्डनीय क्यों हूं ?"

आपत्ति उठानेवाले मन्त्री ने कहा, "मन्त्री तो बदले जा सकते हैं, परन्तु राजा नहीं बदला जाता। यह कारण है, राजा की महिमा मन्त्रियों से अधिक होने में।"

"तो फिर ऐसा करें कि मन्त्रिमण्डल को बदलने का कोई ढंग निकाला जाए।"

"यह कैसे हो सकता है ? मन्त्रिमण्डल से ऊंचा अधिकारी देश में कोई नहीं है।"

"एक है। वह है राज्य-दण्ड, और दण्ड न्यायाधीश के द्वारा ही चल सकता है। मैं समझता हूं कि मन्त्रिमण्डल के कामों पर भी न्यायाधीश को न्याय करने की व्यवस्था कर दी जाए, तो राज्य-दण्ड सब ठीक कर देगा।"

मन्त्रिगण मौन हो गए। इसका अभिप्राय यह था कि कोई भी इस प्रस्ताव के पक्ष में नहीं था।

प्रतापादित्य ने भी मौन रहना उचित समझा। इसका अर्थ वह अपने मन में यह लेता था कि राजाज्ञा हो गई कि न्यायाधीश का कार्यक्षेत्र मन्त्रि-

मण्डल पर भी होगा।

इस मौन आज्ञा का प्रभाव हुआ। इसके कुछ दिन के उपरान्त मुख्य न्यायाधीश का एक पत्र महाराज के नाम आया। महाराज ने वह पत्र मन्त्रिमण्डल में पढ़कर सुना दिया। उसमें लिखा था :

'कल रात श्रीनगर के सुभट्टों ने एक व्यक्ति को किसी के घर में घुस एक स्त्री पर बलात्कार करते पकड़ा है। उस व्यक्ति ने अपना नाम-धाम बताया तो मैं जाच करने स्वयं वहां पहुंचा। मुझे यह बताते हुए अति खेद अनुभव हो रहा है कि वह राज्य के महामन्त्री इन्द्रमणिजी थे।

'सुभट्टों की देखरेख में ही वह इस समय है। मैंने उनकी सब प्रकार की सुख-सुविधा का प्रबन्ध कर दिया है, परन्तु नगर के उस क्षेत्र में बलात्कार करनेवाले को रंगे हाथ पकड़ा गया है और प्रजा अति विक्षुब्ध है। प्रजा अभी यह नहीं जानती कि वह महामात्य महोदय हैं।

'अब जैसी आप आज्ञा दें।'

इसपर मन्त्रिमण्डल का कहना था कि एक मन्त्री पर अभियोग मन्त्रिमण्डल में ही चल सकता है।

प्रतापादित्य ने कहा, "उस अवस्था में यह बताना पड़ेगा कि वह राज्य का महामात्य है और इस घोषणा पर राज्य-भर में विप्लव खड़ा होगा।"

इसपर एक अन्य युवक मन्त्री ने कहा, "परन्तु महाराज ! यह बात विख्यात तो हो जाएगी।"

"यही तो मैं नहीं चाहता। यदि विप्लव हुआ तो हम सबके लिए एक भयंकर स्थिति उपस्थित होगी।"

"तो महाराज !" एक अन्य ने कहा, "मन्त्रिमण्डल के साथ न्याय तो होना चाहिए। एक सामान्य न्यायालय में उसके साथ न्याय नहीं हो सकेगा।"

"तो ऐसा किया जा सकता है कि मैं मुख्य न्यायाधीश को इस अभियोग को स्वयं देखने की आज्ञा दे देता हूं और आज ही मैं एक नया महामात्य नियुक्त कर देता हूं।"

सबको यही उचित समझ आया। प्रतापादित्य ने उसी युवक मन्त्री नागराजमणि को महामात्य-पद पर नियुक्त कर दिया और इन्द्रमणि को कहला भेजा कि वह अब महामात्य नहीं है।

सबको आशा थी कि विष्णुदत्त इन्द्रमणि की रक्षा का प्रबन्ध करेगा। वह नागराजमणि से डरेगा। कारण यह कि न्यायाधीश मन्त्रिमण्डल के अधीन माना जाता था।

इन्द्रमणि के विरुद्ध अपराध सिद्ध हो गया और उसे आजन्म कारा-वास का दण्ड दिया गया। इन्द्रमणि के पुत्र ने मन्त्रिमण्डल के सम्मुख याचिका की थी कि उसके पिता को क्षमा कर दिया जाए।

इस याचिका पर मन्त्रिमण्डल में भारी विवाद हुआ। सबको यह जान विस्मय हुआ कि नागराज मणि जो इन्द्रमणि का मित्र था, वह ही इन्द्रमणि के विरुद्ध था। सबकी बात सुन महाराज ने यह निर्णय दे दिया, "मुझे इस विषय पर विचार सुनकर यह समझ आया है कि इन्द्रमणि ने अपराध तो किया है, परन्तु उसको मन्त्री होने के नाते इतना कठोर दण्ड नहीं देना चाहिए। अतः मैं आज्ञा देता हूं कि उसे अपने परिवारसहित देश से निकल जाने की आज्ञा दे दी जाए।"

नागराजमणि तो यह चाहता था कि इन्द्रमणि का दण्ड कम नहीं करना चाहिए, परन्तु महाराज को इन्द्रमणि के साथ रियायत करते देख चुप रहा।

इस प्रकार मन्त्रिमण्डल में प्रतापादित्य का एक घोर शत्रु कम हो गया। विदेश जाने से पूर्व इन्द्रमणि महाराज से मिलने आया और उसने बताया, "महाराज ! वह स्त्री एक ब्राह्मण की लड़की थी। उसने स्वयं ही अपने को भोग के लिए प्रस्तुत किया था और मुझे रात के समय अपने घर का द्वार खोल भीतर बुलाया था। परन्तु जब हम रतिक्रिया कर रहे थे, तो उसके घरवाले वहां आ गए और हो-हल्ला कर मुझे पकड़वा दिया। लड़की ने उसे बलात्कार बताया।"

"और वह लड़की बहुत सुन्दर थी क्या ?" प्रतापादित्य ने पूछ लिया।

"आपकी दूसरी रानी के समान तो नहीं थी, परन्तु युवती और कुमारी होने के नाते अस्वीकार नहीं हो सकी।"

"देखो इन्द्रमणि, मुझे तुम्हारे साथ सहानुभूति है; परन्तु प्रजा में यह विख्यात नहीं होने देना चाहता था कि मन्त्रियों से रियायत करता हूं। यदि मन्त्रिमण्डल तुम्हारा अभियोग सुनता तो अपनी खाल बचाने के लिए कदाचित् तुम्हें फांसी का दण्ड दे देता। वर्तमान महामात्य ने तुम्हारी बहुत सहायता की थी, जिससे तुम्हें बन्दी रखने के स्थान पर देश से चले जाने की स्वीकृति मिल गई है।"

इस घटना को घटे अभी एक ही महीना व्यतीत हुआ था कि एक साहूकार की मुखबरी पर नागराजमणि रिश्वत लेता पकड़ा गया। उसके साथ भी मन्त्रिमण्डल ने वही किया जो इन्द्रमणि के साथ हुआ था। उसके स्थान पर एक अन्य मन्त्री महामात्य नियुक्त हुआ। इस नये महामात्य का नाम रामनिवास कश्यप था। निकाले गए मन्त्रियों के स्थान पर नये-नये मन्त्री विष्णुदत्त की सम्मति से नियुक्त होने लगे।

इस प्रकार एक वर्ष में मन्त्रिमण्डल सर्वथा बदल दिया गया। साथ ही मन्त्रियों को दण्ड मिलते और उनके अभियोग भी सामान्य न्यायालय में सबके सम्मुख होते देख प्रजागण में महाराज के न्यायप्रिय होने की धूम मच गई।

इस समय महाराज ने शिवजी का एक बहुत बड़ा, विशाल, बहुत ऊंचे कलशवाला धर्मागार के साथ मन्दिर बनवाया। जनता को इससे बहुत प्रसन्नता हुई।

१०

शिव-मन्दिर बनते समय एक अन्य घटना घटी। मन्दिर के लिए नियत भूमि में एक चमार की कुटिया भी आती थी। जब राज्य-कर्मचारी जो मन्दिर बनवा रहे थे, कुटिया गिराने लगे तो वृद्ध चमारिन ने अनशन कर दिया। वृद्धा का पति चमार मुख्य न्यायाधीश के पास यह याचिका ले पहुंच गया कि मन्दिर बनवानेवालों पर उसकी कुटिया गिराने पर रोक लगा दी जाए।

आसपास के लोग भी जिन-जिनको चमारिन के अनशन का पता

चला, चमार के साथ न्यायालय में पहुंच गए। न्यायालय में भीड़ लग गई। इस समय तक ग्यारह में से पांच मन्त्री न्यायाधीश द्वारा दण्डित हो चुके थे। जनता यह देखने आई थी कि यह न्यायाधीश महाराज के विरुद्ध भी निर्णय देता है अथवा नहीं। पण्डित विष्णुदत्त न्यायाधीश की न्यायप्रियता की ख्याति आकाश को छू रही थी।

उस दिन जब पण्डित विष्णुदत्त अपने न्यायालय में आया तो जनता का विशाल जमघट देख चकित रह गया। इससे पूर्व तो मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अभियोग पर निर्णय किए थे। मन्त्रिमण्डल के सदस्य भ्रष्ट तो थे, परन्तु वे पकड़े नहीं जाते थे। उनको पकड़ दण्डित करने के लिए मुख्य न्यायाधीश ने कृत्रिम अभियोग बनवाए थे। इसपर भी सब जानते थे कि मन्त्रिगण भ्रष्टाचार के अभ्यस्त थे और उनके दण्ड पा जाने से सब अति प्रसन्न थे और न्यायाधीश की निर्भीकता तथा न्यायप्रियता पर उसकी प्रशंसा करते नहीं थकते थे।

विष्णुदत्त अपने स्थान पर बैठा तो चमार देवीदास को उसके सम्मुख उपस्थित किया गया। चमार ने अपनी लिखित याचिका उपस्थित की। याचिका में यह कहा गया था :

> 'श्रीमान् ! मेरी यह कुटिया पिछले डेढ़ सौ वर्ष से है। मेरे पूर्वज यहां पांच पीढ़ियों से रहते चले आ रहे हैं। इस कारण मुझे और मेरी पत्नी को इस स्थान से मोह है। हम इसके गिराए जाने का विरोध करते हैं। यदि बलपूर्वक गिराई गई तो मेरी पत्नी इसी स्थान पर भूखी रहकर प्राण त्याग देगी और मैं कटार से पेट फाड़कर आत्म-हत्या कर लूंगा।'

न्यायाधीश ने चमार से पूछा, "तुम्हारे पूर्वजों ने इस भूमि का कितना दाम दिया था ?"

"महाराज ! मेरे पास कोई प्रमाण तो है नहीं। इतना मुझे स्मरण है कि मेरे बाबा ने कहा था कि उनके बाबा ने दो रुपये राज को नज़्र देकर यह भूमि कुटिया बनाने के लिए ली थी।"

"तो अब तुम इस भूमि का क्या दाम चाहते हो ?"

"श्रीमान् ! दाम का प्रश्न नहीं, यह भावना का प्रश्न है। भावना का

मूल्य आंका नहीं जा सकता। यह स्थान हमारा प्राण है। हम इसे छोड़ना नहीं चाहते।"

विष्णुदत्त ने कहा, "भक्त ! सुना है कि तुम शिव के उपासक हो ?"

"नहीं महाराज ! मैं देवी का भक्त हूं। यदि देवी बलि चाहेंगी तो हम दोनों प्राण देने के लिए तैयार हैं।"

"भक्त !" विष्णुदत्त ने याचना के भाव में कहा, "मुझे महाराज के विरुद्ध निर्णय देते संकोच होता है। महाराज तुम्हें मालामाल कर देंगे। मेरा आग्रह है कि यह भूमि छोड़ दो।"

"श्रीमान् !" देवीदास ने कहा, "इस भूमि पर हमारा अधिकार पिछले डेढ़ सौ वर्ष से है। इस कारण धर्मशास्त्र के विधान से हमारा भूमि पर अबाध अधिकार है। मैं और मेरी पत्नी इस भूमि को नहीं छोड़ेंगे।"

"तुम्हें राज्य की ओर से इससे बहुत बढ़िया भूमि पर बहुत सुन्दर और पक्का मकान बनवा दिया जाएगा।"

"श्रीमान् ! मेरी याचिका है कि कश्मीर राज्य बहुत लम्बा-चौड़ा देश है और मेरी कुटिया को छोड़कर अभी बहुत स्थान परती पड़ा है। मेरी कुटिया गिराने पर रोक लगा दी जाए।"

विवश विष्णुदत्त ने आज्ञा दे दी कि मन्दिर किसी अन्य स्थान पर बनाया जाए। यह कुटिया नहीं गिरानी चाहिए, क्योंकि इसका मालिक इसके गिराने को पसन्द नहीं करता।

विष्णुदत्त की आज्ञा पर राज्य-कर्मचारियों को आज्ञा दी गई कि यदि इस आज्ञा के विरुद्ध किसीको कुछ कहना है तो न्यायालय में पहुंचकर बताए।

कर्मचारी, जो मन्दिर बनाने की देखरेख कर रहे थे, भागे-भागे महाराज प्रतापादित्य के पास पहुंचे। कर्मचारियों ने न्यायाधीश की आज्ञा बताई तो महाराज ने राज्य-कर्मचारियों को तो यह कहा, "न्यायाधीश की आज्ञा माननी चाहिए। अभी निर्माण-कार्य स्थगित किया जाए, और मन्दिर महारानीजी बनवा रही हैं, वह अपनी याचिका न्यायाधीश के सम्मुख उपस्थित करेंगी।"

मन्दिर-निर्माण-कार्य के मुख्य अधिकारी ने बताया, "महाराज !

मन्दिर पर अभी तक दो लाख स्वर्ण-मुद्रा व्यय हो चुकी हैं। यदि यह कुटिया न हटाई गई तो मंदिर में पूजा-पाठ करनेवाले भक्तजनों को बहुत बुरा लगेगा। वे अपना ध्यान भगवान में नहीं लगा सकेंगे।"

प्रतापादित्य ने कहा, "यह ठीक है कि मंदिर बनवाने में आज्ञा मेरी है, परन्तु महारानीजी की ही इच्छा से और उनके ही निजी धन से यह बन रहा है और वह ही इसके विषय में आज्ञा देने का अधिकार रखती हैं। अभी निर्माण-कार्य रोक दिया जाए और महारानीजी की आज्ञा की प्रतीक्षा की जाए।"

निर्माण-अधिकारी ने कहा, "महाराज! एक चमार के हठ के सम्मुख लाखों स्वर्ण को मिट्टी में मिलाया जा रहा है। आपके संकेतमात्र से हम चमार और चमारिन की खुर-खोज मिटा सकते हैं।"

प्रतापादित्य ने डांट के भाव में कहा, "देखो शिवकुमार! यह हानि चमारिन के कारण नहीं हो रही, वरंच तुम्हारे कारण हो रही है। निर्माण से पहले तुम्हें भूमि खाली करवा लेनी चाहिए थी। यदि चमारिन स्थान छोड़ने के लिए तैयार नहीं थी, तो तुम्हें कोई अन्य स्थान ढूंढ़ना चाहिए था। यह सब निर्माण-कार्य आरम्भ करने से पहले होना चाहिए था। तुम जैसे मूर्ख अधिकारी के दोष का दण्ड हम किसी अन्य को देना नहीं चाहते। तुम मूर्ख को राज्य-सेवा में रखने के लिए राज्य हानि सहन करेगा। इसपर भी हम कहते हैं कि मन्दिर महारानीजी अपने धन से बनवा रही हैं और इस विषय में न्यायालय की आज्ञा का उत्तर वह ही देंगी। अभी मन्दिर का निर्माण-कार्य रोक दिया जाए।"

जब प्रतापादित्य ने न्यायाधीश की आज्ञा की सूचना नरेन्द्रप्रभा को दी तो उसकी प्रथम प्रतिक्रिया यही थी कि मन्दिर नहीं बनेगा, जब तक चमारिन स्वतः अपनी कुटिया को नहीं गिराएगी।

न्यायाधीश की आज्ञा का उत्तर उसने यह लिखकर भेजा :

> 'जब तक देवीदास और उसकी पत्नी स्वेच्छा से कुटिया इस काम के लिए नहीं छोड़ेंगे, तब तक न्यायाशीश की आज्ञा का पालन किया जाएगा और मन्दिर का निर्माण स्थगित रहेगा।'

प्रतापादित्य ने पूछा, "तो अब क्या करेंगी प्रभाजी ?"

"देखिए महाराज ! धन का लोभ तो न्यायाधीश उसे दे चुके हैं। वे लोग नहीं माने। उसके भूख-हड़ताल का उत्तर तो भूख-हड़ताल से ही दिया जाएगा। मैं आज से ही मन्दिर में अपनी खाट डलवा भूख-हड़ताल आरम्भ करती हूं। यदि वह अपने न्यायाधीश से रोक लगवाने में सफल हुई है तो मैं अपने न्यायाधीश से यह रोक उठवाने की याचना करूंगी।"

प्रतापादित्य इसका अर्थ नहीं समझा और रानी का टुकुर-टुकुर मुख देखने लगा।

नरेन्द्रप्रभा ने बताया, "महाराज ! मैं भगवान शिवजी से प्रार्थना करूंगी कि वह उस दम्पती के मन में प्रेरणा दें कि वे मन्दिर के लिए स्थान खाली कर दें। जब तक वे स्वेच्छा से कुटिया भगवान के लिए नहीं देते, तब तक मन्दिर का बनना स्थगित रहेगा और नरेन्द्रप्रभा अन्न नहीं लेगी।"

उसी दिन मन्दिर में महारानी के रहने योग्य स्थान बनाया गया और नरेन्द्रप्रभा ने वहां जा अन्न लेना छोड़ दिया।

इससे तो वे लोग जो चमारिन के कार्य की वाह-वाह कर रहे थे, जौंक-दर-जौंक महारानी को देखने अर्द्ध निर्मित मन्दिर में आने लगे।

वह बन रहा मन्दिर तो एक तीर्थ-स्थान हो गया और लोग दोनों भूख-हड़ताल करनेवालों को देखने आने लगे।

चमारिन को जब मन्दिर में लोग आते-जाते दिखाई देने लगे और उनके आने-जाने का कारण पता चला तो वह महारानी के मर जाने की सम्भावना पर कांप उठी।

चमारिन को अन्न छोड़े एक सप्ताह से ऊपर हो चुका था और महारानी को अन्न छोड़े पांच दिन। एकाएक चमारिन की खाट उठाकर मन्दिर में महारानीजी की खाट के पास लाई गई। चमारिन ने लड़खड़ाते पगों से उठ महारानीजी के चरणों को छूकर कहा, "महारानीजी, मैंने अपनी कुटिया मन्दिर को दे दी।"

महारानी ने पूछा, "क्या दाम मांगती हो ? मांगो !"

"यह मैं परमात्मा के नाम पर दे रही हूं और परमात्मा से मांगा नहीं जाता। वह सब कुछ देखता है और स्वतः मनुष्य के कर्मों का फल देता है।

अतः मैं कुटिया उसीके नाम पर दे रही हूं।"

लोग चमारिन के इस त्याग पर चकित रह गए। जहां चमारिन के कुटिया छोड़ने पर उसकी प्रशंसा हो रही थी, वहां महारानी के राजाज्ञा के स्थान पर भगवान के चरणों में अनशन कर नरेन्द्रप्रभा की भी प्रशंसा होने लगी थी।

नरेन्द्रप्रभा के अपने विवाहित पति को छोड़कर कश्मीर-नरेश की प्रेयसी बन रहने का अपमान इस कार्य से धुल गया।

अब मन्दिर पुनः बनना आरम्भ हुआ। चमारिन कहां गई, कोई नहीं जानता था और चारों ओर महारानी नरेन्द्रप्रभा की जय-जयकार होने लगी थी।

प्रतापादित्य का महाराज दुर्लभवर्धन का पुत्र न होना तथा उसकी मां अनंगलेखा का असती होना लोग भूल गए। महाराज प्रतापादित्य का एक वैश्य की विवाहित पत्नी को अपनी प्रेयसी बनाना भी लोगों को विस्मरण हो गया।

यह जनमानस की रीति है। इसकी स्मृति बहुत क्षीण होती है। यह वर्तमान को ही देखता है। भूत और भविष्य इसके लिए अर्थहीन हैं।

शिव-मन्दिर का उद्घाटन हुआ तो कश्मीर-भर के लोग लाखों की संख्या में उद्घाटन-समारोह देखने राजधानी श्रीनगर में एकत्रित हो गए। जहां भगवान के मन्दिर की भव्यता और विशालता की प्रशंसा होती थी, वहां महाराज प्रतापादित्य की न्यायप्रियता और महारानी नरेन्द्रप्रभा की भगवान शिव के प्रति निष्ठा और भक्ति की भी महिमा होती थी।

जब झुण्ड के झुण्ड लोग मन्दिर में भगवान के लिंग के दर्शन को जाते थे और भगवान पशुपति शिव की जय-जयकार करते थे, तो महारानी नरेन्द्रप्रभा की भी महिमा का गान होता था।

दूसरा परिच्छेद

प्रतापादित्य की विवाहित पत्नी पद्मावती के माता-पिता पण्डित नीलकण्ठ के यजमान थे। अतः जब वह राजकुमार प्रतापादित्य को पढ़ाने के लिए गुरु नियुक्त हुआ तो वे अपने और अपने यजमानों के अभ्युदय की चिन्ता करने लगे।

यह उनके ही प्रयत्नों का फल था कि पद्मावती, रमाकान्त मन्त्री और उसकी पत्नी महामती की पुत्री पद्मावती राज्यप्रासाद की शोभा बन गई। पद्मावती कुछ अधिक सुन्दर कुमारी नहीं थी और प्रतापादित्य की मां अनंगलेखा, जो वीरभद्र की सहायता से महारानी के पद पर नियुक्त हुई थी, के पद्मावती को पसन्द न करने पर भी प्रतापादित्य को विवाह के लिए तैयार कर विवाह सम्पन्न कराने में सफल हो गई थी।

वीरभद्र जो प्रतापादित्य का वास्तविक जन्मदाता था, पद्मावती जैसी सामान्य रूपरेखावाली स्त्री का रानी बनने से विरोध करता था; परन्तु नीलकण्ठ की युक्ति और प्रेरणा के सामने उसकी भी बात चल नहीं सकी।

प्रतापादित्य का विवाह हुआ तो वह प्रतापादित्य को राज्यकार्य सम्हालने का आग्रह करने लगा। जब राजकुमार प्रतापादित्य अठारह वर्ष का हुआ तो उसका विवाह हो गया और उसी वर्ष उसका राज्याभिषेक हो गया।

नीलकण्ठ का प्रतापादित्य पर निर्बाध प्रभाव देख वीरभद्र उसका शत्रु

हो गया और प्रतापादित्य को प्रेरणा देने लगा कि वह नीलकण्ठ को सेवा-मुक्त कर दे। नीलकण्ठ को यह सूचना प्रतापादित्य से ही मिली। अतः वह प्रतापादित्य को वीरभद्र की हत्या करने में सहायक बना स्वयं उसकी हत्या करने में सफल हो गया।

उस समय प्रतापादित्य अपने अध्यापक नीलकण्ठ के सम्मोहन में फंसा हुआ उसकी प्रत्येक बात मानता था। यों तो नीलकण्ठ समझता था कि वह वीरभद्र की हत्या कर सकता है, परन्तु प्रतापादित्य को इसमें सहायक बना वह पकड़े जाने की अवस्था में अपने बचाव की योजना बना चुका था।

हत्या करते समय वह पकड़ा नहीं गया और हत्यारे का इनाम दस सहस्र रजत वह स्वयं प्राप्त कर गया। इसके अतिरिक्त वह पहले मन्त्रि-मण्डल में सदस्य बना और पीछे महामात्य बन गया।

नीलकण्ठ का विचार था कि वह अब अपना जीवन शान्ति से व्यतीत करेगा और किसी प्रकार की उच्छृंखलता नहीं करेगा, परन्तु उसके यज-मानों, पद्मावती के माता-पिता ने उसको भड़काना आरम्भ कर दिया। वे अपनी लड़की को बहुत दुखी समझते थे। नरेन्द्रप्रभा के आने के उपरान्त वह एक त्यक्ता पत्नी की भांति रहती थी। पद्मावती के माता-पिता का विचार आरम्भ में तो इतना मात्र था कि नरेन्द्रप्रभा को राज्यप्रासाद से निकलवा दिया जाए। नीलकण्ठ ने इसमें यत्न भी किया, परन्तु प्रतापा-दित्य नरेन्द्रप्रभा के मोह-जाल में बहुत बुरी तरह फंसा हुआ था। इससे वह नरेन्द्रप्रभा की निन्दा एक कान से सुन दूसरे कान से निकाल देता था।

नीलकण्ठ देख रहा था कि वह उत्तरोत्तर उसके मोह में अधिक और अधिक फंसता चला जाता है। इस कारण वह नरेन्द्रप्रभा की हत्या पर उद्यत हो गया। इस बार उसने यह विचार किया कि इस कार्य के लिए किसी सैनिक को नियुक्त किया जाए। इसके लिए सेनाध्यक्ष को षड्यन्त्र में सम्मिलित करना पड़ा। सेनाध्यक्ष ने योजना का लक्ष्य बदल दिया। उसने नरेन्द्रप्रभा की हत्या के स्थान प्रतापादित्य की हत्या का प्रस्ताव किया। उसकी युक्ति यह थी कि यदि किसी बालक के गले में रत्नजड़ित माला हो तो माला को प्राप्त करना ध्येय होना चाहिए। बालक की हत्या करने से ही यह सम्भव है।

इस कारण नरेन्द्रप्रभा की हत्या तो रत्नजड़ित आभूषण को विनष्ट करने के समान मूर्खता समझी जाएगी। उसकी योजना यह बनी कि प्रतापादित्य को इस लोक से उठा दिया जाए और उसके गले में पड़ा रत्नजड़ित आभूषण नरेन्द्रप्रभा को सेनाध्यक्ष धारण कर ले। महामात्य नीलकण्ठ को यह प्रलोभन दिया गया कि वह व्यावहारिक रूप में कश्मीर-नरेश बन सकेगा। सेनाध्यक्ष उसकी सहायता कर देगा।

यह योजना पद्मावती के माता-पिता की स्वीकृति प्रदान करने के लिए गई तो उनका संशोधन यह हो गया कि प्रतापादित्य की हत्या के उपरान्त पद्मावती महारानी-पद पर घोषित की जाए और उसका लड़का राजकुमार घोषित किया जाए।

षड्यन्त्र में पद्मावती को भी सम्मिलित करने का यत्न किया गया। उसे योजना बताने से पूर्व उससे सब कुछ गुप्त रखने की सौगन्ध ली गई। परिणामस्वरूप उसने सहायता देने का वचन दिया। उसका सहयोग इतना ही था कि उसने पूर्ण घटना पर पर्दा डाल देना है और स्वयं महारानी बन महामात्य की सहायता से राज्य चलाना है।

पद्मावती इस योजना को मन ही मन अस्वीकार कर चुकी थी। महामात्य इत्यादि ने भी उसको उतना ही बताना उचित समझा, जितना आवश्यक था। अतः पद्मावती महाराज को सचेत तो कर सकी, परन्तु पूर्ण रूप से व्याख्यासहित नहीं बता सकी कि क्या और कब होनेवाला है।

जिस रात प्रतापादित्य उससे और अधिक सूचना पाने के लोभ में नरेन्द्रप्रभा की सम्मति से पद्मावती के शयनागार में सोने गया तो पद्मावती ने उसको वहां से भगाने के लिए डराया ही था। इसपर प्रतापादित्य ने उसी रात महामात्य को बन्दी बना लेने के विचार से सेनाध्यक्ष को बुला लिया। पद्मावती ने भयभीत मन से ही महाराज को सचेत और सतर्क करने के लिए यह सुझाव दे दिया कि वह छुपकर सेनाध्यक्ष की गतिविधि देखें और पीछे आश्वस्त होने पर उससे भेंट करें।

इस सावधानी से ही महाराज और राज्य बच गए। इसपर विष्णुदत्त ने भ्रष्ट मन्त्रिमण्डल से छुटकारा पाने में महाराज की सहायता की।

इस षड्यन्त्र को पांच वर्ष व्यतीत हो चुके थे। रमाकान्त, उसकी

पत्नी और नीलकण्ठ विदेश में रहते हुए उदास हुए तो पुनः श्रीनगर में आने की योजना बनाने लगे।

नीलकण्ठ समझ गया था कि षड्यन्त्र प्रायः असफल होते हैं। यह इस कारण कि षड्यन्त्र में एक से अधिक लोग सम्मिलित होते हैं। नीलकण्ठ ने इस बार वही उपाय विचार किया जो उसने वीरभद्र की हत्या के समय किया था। अकेला ही योजना चलाने का विचार कर बैठा।

उसने पद्मावती के पिता से कहा, "इस बार योजना में आपको मैं सम्मिलित नहीं कर रहा। कारण यह कि कोई भी रहस्य दो व्यक्तियों के भीतर अरक्षित हो जाता है और तीन के भीतर तो वह रहस्य रहता ही नहीं।" उसने पद्मावती के पिता से यह वचन लिया कि यदि वह सफल हुआ तो महामात्य-पद पर पुनः नियुक्त हो सकेगा।

इस प्रकार निश्चय कर वह गुप्त रूप में श्रीनगर में आ पहुंचा और एक रत्नों के सौदागर के रूप में अभिनय करने की योजना को परिपक्व करते-करते एवं इस रूप का अभ्यास करने के लिए नगर के कुछ रत्नों के व्यापारियों से सम्पर्क बनाते-बनाते दो वर्ष और व्यतीत हो गए। इस प्रकार एक दिन वह रत्न दिखाने महाराज के बैठकघर में जा पहुंचा। वहां महाराज की दोनों रानियां भी रत्न देखने के लिए बुला ली गईं।

पद्मावती तो सौदागर को देखते ही उसपर सन्देह करने लगी थी। यद्यपि नीलकण्ठ ने अपने रंग-रूप को दाढ़ी-मूंछ बढ़ाकर बहुत कुछ छुपाने का यत्न किया था, परन्तु पद्मावती पहचान गई और उसने पूछ ही लिया, "नीलकण्ठजी ! यह व्यवसाय कब से आरम्भ किया है ?"

नीलकण्ठ का नाम सुनते ही प्रतापादित्य अपना खड्ग खूंटी से उतारने के लिए लपका, परन्तु नीलकण्ठ तो इस सम्भावना की पहले ही आशा करता था। उसने पूर्व इसके कि प्रतापादित्य अपने खड्ग तक पहुंच सके, वह उसकी हत्या करने में सफल हो गया। उसने अपने उत्तरीय के नीचे से कटार निकाल प्रतापादित्य का पेट चीर डाला और फिर सब रत्नादि वहां छोड़ भाग खड़ा हुआ।

प्रतापादित्य की हत्या के उपरान्त नीलकण्ठ भाग गया, परन्तु राज्य-भर में उसकी खोज आरम्भ हो गई। वह कश्मीर-कामभोज की सीमा

पार करता हुआ पकड़ा गया।

नीलकण्ठ को विष्णुदत्त के सम्मुख उपस्थित किया गया और नीलकण्ठ को बहुत मारा-पीटा गया, जिससे वह बक गया कि उसका इस हत्या में उद्देश्य पद्मावती के साथ हो रहा अन्याय है। इससे तो पद्मावती पर भी सन्देह होने लगा कि वह इस षड्यन्त्र में सम्मिलित है। यद्यपि इस बार भी उसने ही महाराज को सचेत किया था, परन्तु उसे तो सामयिक दुर्बलता ही समझा गया।

विष्णुदत्त महामात्य बना और नरेन्द्रप्रभा का बड़ा लड़का जो इस समय दस वर्ष की आयु का था, राज्यगद्दी पर बिठा दिया गया। राज्य महामात्य के रूप में विष्णुदत्त चलाने लगा।

जनता विष्णुदत्त की न्यायप्रियता पर मुग्ध थी। जनता नरेन्द्रप्रभा को धर्म-कर्म में लीन देख उसपर भी विश्वास रखती थी और दोनों रानियों की सहमति से राज्य की बागडोर विष्णुदत्त के हाथ में आ गई।

२

अब कल्हण कश्मीर के इस रोचक इतिहास को सुनाने के लिए महाराज जयचन्द के राज्यप्रासाद में जाने लगा था। कल्हण का पिता अपने पुत्र को एक उपयोगी कार्य में लगा देख प्रसन्न था।

कल्हण की वर्णन-शैली में विशेष रस था और साथ ही इतिहास और कल्पना का ऐसा सम्मिश्रण था कि इतिहास की उपयोगिता दिखाई देने लगी थी।

कल्हण कह रहा था, "पाप का बीज गोखरू की भांति जिस भूमि पर पड़ जाए फिर भूमि को कांटों से भर देता है। वही बात उस समय कश्मीर राज्य की हो रही थी। विष्णुदत्त एक कुशल कृषक की भांति कांटों को जला भस्म करने में लगा था, परन्तु कांटे द्रुतगति से बढ़ रहे थे। विष्णुदत्त ने न्यायाधीश का पद छोड़ महामात्य-पद स्वीकार किया तो उसने प्रथम भूल यह की थी कि नीलकण्ठ के मृत्युदण्ड को घटाकर आजीवन कैद के दण्ड की आज्ञा कर दी थी।

वार-वार परीक्षा करने पर भी नीलकण्ठ पर दया-भाव किसलिए दिखाया गया ? महाराज जयचन्द का प्रश्न था।

कल्हण का कहना था—महाराज ! इतिहास पढ़नेवालों के मन में यह और इसी प्रकार के प्रश्न स्थान-स्थान पर उठा करते हैं। इसी कारण भारत के विद्वानों ने इतिहास के साथ पुराण का अंश जोड़ रखा है। इतिहासकार तो केवल घटनाओं का ही वर्णन करता है, परन्तु पुराण-लेखक उन ऐतिहासिक घटनाओं का कारण और घटनाओं का परिणाम भी वताने का यत्न किया करते हैं। इसके वताने में इतिहास-लेखक के ज्ञान और योग्यता का परिचय मिलता है। साथ ही ऐतिहासिक घटना के कारणादि वर्णन करने में सवके विश्वास न करने में कारण भी है। कभी तो पुराण-लेखक कारण वताने में भूल कर जाता है। यह उसके ज्ञान में त्रुटि के कारण होता है और कभी पुराण पढ़नेवालों में वुद्धि नहीं होती और वे घटना और कारण में सम्वन्ध न जोड़ सकने पर पुराण को गल्प समझने लगते हैं।

और फिर कुछ पाठक ऐसे भी हैं, जो पुराण को गल्प समझते हुए इतिहास को भी गल्प समझने लगते हैं। इसपर भी, महाराज, जव-जव इतिहास सामान्य मनुष्यों के लिए लिखा जाएगा तो इतिहास के साथ कुछ न कुछ अंश पुराण का अर्थात् घटनाओं के कारण और परिणाम का वर्णन अवश्यम्भावी है। अन्यथा इतिहास एक निरर्थक प्रयास रह जाएगा। पुराण को इतिहास की विवेचना भी कहा जा सकता है।

कामभोज में रहते हुए पद्मावती का पत्र उसके माता-पिता को मिला। रानी ने पत्र में लिखा, 'पूज्य माताजी ! पहली वार मैंने वहुत कठिनाई से नीलकण्ठ तथा आपका जीवन वचा लिया था, परन्तु इस वार तो यह कठिन हो गया है। मैं नहीं चाहती थी कि आपका नाम इस कुत्सित कार्य के साथ जुड़े, परन्तु नीलकण्ठ सव वक गया है। परिणामस्वरूप मैं तो एक वहिष्कृत प्राणी की भांति राज्यप्रासाद में रहती हूं और जो कुछ आप चाहते थे, उसके विपरीत दूसरी रानी पटरानी वन गई है। उसका वड़ा लड़का कश्मीर-नरेश घोषित हो गया है और मैं अव राज्यप्रासाद में रहते हुए भी यहां ऐसे रहती हूं, जैसे वन्दीगृह में कोई वन्दी रहता है। है तो यह

राज्यप्रासाद ही। यहां मेरे आगार में गद्देदार पलंग और कालीन भी हैं। आगारों की दीवारें और छतों पर सुन्दर चित्र और सोने-चांदी के झाड़-फानूस भी हैं, परन्तु राज्यप्रासाद का प्रत्येक व्यक्ति मुझे अपने पर देखरेख करता दिखाई देता है। मैं अब अपने जीवन के शेष दिन यहां ऐसे व्यतीत कर रही हूं, जैसे आजीवन कैद का बन्दी व्यतीत करता है। अपना सुख-समाचार भेजेंगे तो मन में शांति अनुभव करूंगी।'

जिस दूत के हाथ पत्र भेजा गया था, वही उत्तर भी लाया। उत्तर में केवल एक वाक्य था, 'तुम भी यहां आ जाओ।'

यह प्रस्ताव पद्मावती ने नहीं माना। वह मन में विचार करती थी कि श्रीनगर में रहते हुए समय पाकर यहां के लोग यह समझने लगेंगे कि या तो वह निर्दोष है अथवा अब सुधर गई है। तब उसका मान पुनः होने लगेगा। साथ उसे अपने पुत्र का भी विचार था।

वह समझती थी कि यदि यहां से भागी तो यह निर्विवाद रूप में सिद्ध हो जाएगा कि मैं पहले षड्यन्त्रों में भी सम्मिलित थी। इस कारण उसने मां के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया।

प्रतापादित्य की हत्या के उपरान्त नरेन्द्रप्रभा के मन में पद्मावती के प्रति मैल नहीं आई थी, परन्तु जब विष्णुदत्त के न्यायालय में नीलकण्ठ ने अपना वक्तव्य दिया और उसमें उसने बताया कि वह पद्मावती के माता-पिता के कहने पर इस काम के लिए यहां आया था, तो विष्णुदत्त ने पूछ लिया, "नीलकण्ठजी ! आप पद्मावती से भी मिलते रहते थे क्या ?"

"मैं मिला तो नहीं था। इसपर भी मेरा अनुमान है कि मां ने बेटी को अवश्य लिखा होगा। मैं समझता हूं कि इसी कारण पद्मावती मुझे पहचान गई थी।"

इस वक्तव्य के उपरान्त तो नरेन्द्रप्रभा का मेलजोल पद्मावती से छूट गया। नरेन्द्रप्रभा यह विचार करती थी कि इस स्त्री ने उसे विधवा का जीवन व्यतीत करने पर विवश किया है। यह स्वयं तो पति के जीवनकाल में भी विधवा के समान रहती थी और अब उसे भी अपने समान बनाने का यत्न उसने किया है। उसे इस बात का रोष था और वह राज्य-प्रासाद के उन आगारों में चली गई थी, जो पद्मावती के आगारों से दूर थे।

नरेन्द्रप्रभा का लड़का चन्द्रमीड़ राजा घोषित कर दिया गया। उसका गुरु मिहिरदत्त काशी से धर्मशास्त्र पढ़कर आया था और बहुत विद्वान माना जाता था।

जब प्रतापादित्य की हत्या हुई थी तो चन्द्रमीड़ ग्यारह वर्ष का था और उसका छोटा भाई तारामीड़ नौ वर्ष का था। मिहिरदत्त पढ़ाता तो दोनों को था, परन्तु पूर्वजन्म के कर्म दोनों के व्यवहार में भिन्नता ला रहे थे। मिहिरदत्त जब उनका अध्यापक नियुक्त हुआ तो तारामीड़ तीन वर्ष का था। उस समय प्रतापादित्य अभी जीवित था। पहले दिन ही तारामीड़ पूछने लगा, "गुरुजी ! मैं आपकी गोद में नहीं बैठ सकता क्या ?"

"बैठ सकते हो; परन्तु तुम क्यों बैठना चाहते हो ? यह बताओगे तो मैं विचार करूंगा कि तुमको बिठाऊं अथवा नहीं।"

तारामीड़ ने कुछ देर विचार किया और कहा, "गुरुजी ! आपकी दाढ़ी बहुत सुन्दर है। मैं उसे छूकर देखना चाहता हूं।"

"छूने से क्या होगा ?"

"मैं मां के केश छूता हूं तो बड़ा स्वाद आता है।"

"परन्तु तुम छूते तो हाथ से हो और स्वाद तो मुख को आता है। यह कैसे कहते हो कि छूने से स्वाद आता है ?"

"मां कहती थी कि जैसे खुजलाने से स्वाद आता है।"

"तो तुम मां का सिर खुजलाते हो ?"

"हां, गुरुजी ! अब आप समझे हैं।"

मिहिरदत्त हंस पड़ा। उसे हंसता देख तारामीड़ लपककर गुरुजी की गोद में बैठ गया और लगा गुरुजी की ठुड्डी खुजलाने। कुछ काल तक तो गुरु हंसता रहा, परन्तु इस समय तारामीड़ ने एक बाल नोच लिया। इससे तो गुरु को पीड़ा हुई और उसने 'ऊं' की तो तारामीड़ हंसकर बोला, "आप तो रोने लगे हैं। मैंने आपकी दाढ़ी में से सफेद बाल ही उखाड़ा है।"

मिहिरदत्त ने पूछ लिया, "तो तुम मां के सिर में से सफेद बाल उखाड़ा करते हो ?"

"हां, गुरुजी ! मां कहती थी कि सफेद बाल तो मर जाते हैं और उनके उखाड़ने से पीड़ा नहीं होती।"

"परन्तु मुझे तो पीड़ा हुई है।"

"तब तो आप माँ से दुर्बल है।"

"हां, यह तो है। तुम्हारी माताजी देश की रानी है। वह अपराधी को फांसी का दण्ड दे सकती है। मैं यह नहीं कर सकता। इससे कहा जा सकता है कि वह मुझसे बहुत अधिक बलशाली है।"

इस प्रकार तारापीड़ बचपन से ही उच्छृंखल था। गुरुजी के आने के समय वह प्रायः अनुपस्थित रहता था। वह अपने खेल में गुरुजी के पढ़ाने के लिए आने का समय भूल जाता था। वह प्रायः दास-दासियों से खेलने में रस पाता था।

जब तारापीड़ पांच वर्ष का हुआ तो मिहिरदत्त ने कहा, "देखो तारा! तुम अब बच्चे नहीं रहे। आज तुम्हारा छठा जन्मदिन है। अतः तुम्हें नियम से पढ़ने आना चाहिए।"

तारापीड़ का कहना था, "मैंने अपना गुरु एक अन्य बना लिया है।"

"किसको?"

"मेघ को।"

"वह कौन है?"

तारा बताना नहीं चाहता था। उसने कह दिया, "गुरुजी! वह भी कोई है।"

चन्द्रपीड़ ने बताया। उसने कहा, "वह माताजी की एक दासी का घरवाला है। वह भी माताजी के आगारों की सफाई इत्यादि करता है।"

"तो माताजी ने पूछकर उसे गुरु बनाया है?" मिहिरदत्त ने पूछ लिया।

"परन्तु माताजी ने तो आपसे पढ़ने को भी नहीं कहा।"

"उन्होंने मुझे इसके लिए आज्ञा दी है।"

"तो आप पढ़ाइए। मुझे कहा नहीं। मैं तो जा रहा हूं।"

बात महारानी नरेन्द्रप्रभा के पास पहुंची। उसी सायंकाल नरेन्द्रप्रभा ने तारापीड़ से पूछा, "क्यों तारा! तुम गुरुजी से पढ़ने नहीं जाते?"

"कौन गुरुजी?"

"जो चन्द्र को पढ़ाते हैं।"

"उनको कुछ नहीं आता। इस कारण मैं उनसे पढ़ने नहीं जाता।"

"यह तुमको किसने कहा है ?"

"मेघ ने। वह तो बहुत अच्छी-अच्छी कहानियां सुनाता है।"

"कौन-सी कहानी सुनाता है ?"

"नित्य ही नई कहानी सुनाता है। और चन्द्र के गुरुजी तो 'अ-आ, इ-ई, उ-ऊ' ही सिखाते रहते हैं। वह मुझे सब आ गया है।"

"क्या आ गया है ? सुनाओ तो।"

"मां ! सब कुछ। 'अ' से लेकर 'ज्ञ' तक। मेघ कहता था कि इसके बाहर तो कुछ है ही नहीं।"

"मगर इससे अधिक तो है। देखो, लिखकर बताओ।"

"तो मैं अपनी पाटी ले आऊं ?"

"हां। जल्दी करो। मेरे पास अधिक समय नहीं। अभी महामात्य आनेवाले हैं।"

तारा गया और अपनी पाटी ले आया। पाटी का एक ओर खाली था और दूसरी ओर कुछ चित्र बना हुआ था। नरेन्द्रप्रभा ने देखा, कुछ रेखाएं-सी थीं। ध्यान से देखने पर नरेन्द्रप्रभा को पता चला कि किसी नग्न स्त्री का चित्र है। मां ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर पूछा, "यह क्या बनाया है ?"

"यह रामी है।" रामी मेघ की पत्नी का नाम था।

"और यह किसने बनाई है ?"

"क्यों मां, ठीक नहीं बनी ? मैंने ही बनाई है।"

"कैसे बनाई है ?"

"उसे देख-देखकर।"

"वह तो बहुत कुरूप है और तुमने तो कुछ भी नहीं बनाया। ये तो लकीरें ही हैं।"

"मां ! मेघ कहता था कि धीरे-धीरे बहुत ठीक बनाने लगूंगा।"

नरेन्द्रप्रभा पुत्र की शिक्षा की बात जान कांप उठी। उसने उसी समय रामी को बुलाया और पाटी दिखा पूछा, "यह क्या है ?"

"यह राजकुमार तारा ने बनाई है। महारानीजी ! बहुत सुन्दर बनाई है।"

"यह सुन्दर है ?"

"मेरा अभिप्राय है कि जैसी मैं हूं, ठीक वैसी ही बनाई है।"

"तो तुम इसके सम्मुख नग्न हो बैठा करती हो ?"

"जी, महारानीजी ! वह अभी बच्चा है। उसको नग्न और ढकी हुई में अन्तर का ज्ञान नहीं। इससे उसको चित्र बनाने देती हूं। मधु का पिता कहता था कि तारा बहुत योग्य चित्रकार बनेगा।"

"देखो, यदि फिर कभी मुझे पता चला कि तुम अपनी तस्वीर इससे उतरवाने के लिए इसके सम्मुख नग्न हो बैठती हो, तो तुम्हें सेवा से निकाल दूंगी।"

"परन्तु महारानीजी ! राजकुमार को भी मना कर दो कि मेरे कक्ष में न आया करें।"

"देखो तारा !" नरेन्द्रप्रभा ने पुत्र को मना कर कहा, "यदि तुम फिर कभी रामी की कोठरी में गए तो पीटे जाओगे।"

"परन्तु मा ! मैं तो राजकुमार हू। क्या राजकुमार भी पीटे जाते हैं ?"

"राजकुमार को उनकी मा पीट सकती है।"

"तो नहीं जाऊंगा।" तारा मान गया।

"और चन्द्र के गुरुजी से गणित सीखने जाना होगा।"

"वह तो मैं सब पढ़ गया हू।"

"नहीं, तुम अभी सब नहीं पढ़े। देखो, यह पढ़कर सुनाओ।"

नरेन्द्रप्रभा ने एक राशि पाटी पर लिख दी। तारा ने पढ़ दी। उसने पढ़ा, "दो तीन पाच छ एक।"

"यह राशि पढ़ी है ?"

"तो क्या पढ़ा है ?"

"यह तो अंक हैं। देखो, इसको कहते हैं तेईस हजार पाच सौ इकसठ।"

"यह तो गलत तरीका है पढने का।"

नरेन्द्रप्रभा मन ही मन प्रसन्न थी। वह पाच वर्ष के अपने बच्चे को इस प्रकार अधिकारयुक्त वाणी में कहते देख समझ रही थी कि तारा अपने बड़े भाई चन्द्र से अधिक योग्य बनेगा।

पद्मावती का एक ही लड़का था। उसका नाम ललितादित्य था। उसे पद्मा स्वयं पढ़ाती थी।

तारा ने मां को वचन दिया कि वह रामी के आगार में नहीं जाएगा और वह वहां नहीं गया। इसपर भी तारा जब मिहिरदत्त से पढ़ने जाता था तो वे दोनों अकस्मात् मिल जाते थे। कभी मां के आगार में तो कभी राज्यप्रासाद में चलते-फिरते।

इसके दो वर्ष उपरान्त की बात है। अब दोनों भाई पढ़ते थे। दोनों की रुचि भिन्न-भिन्न थी। तारामीड़ चन्द्र से अधिक चंचल था। उसके लिए दो-तीन घण्टे गुरुजी के पास बैठना दूभर होता था। इसपर भी वह पाठ स्मरण करने में अपने बड़े भाई चन्द्र से अधिक योग्य था। कभी-कभी तो गुरुजी कुछ पढ़कर सुनाते थे तो तारामीड़ उसको वैसे ही दोहरा देता था।

३

"रामी!" तारामीड़ ने राज्यप्रासाद के एक सांकड़े मार्ग पर चलते हुए रामी को सम्बोधन किया तो वह चलती-चलती खड़ी हो गई और पूछने लगी, "हां, तारा भैया! क्या कहते हो?"

"तुम्हारे आगार में आने को जी चाहता है।"

"किसलिए?"

"अब तुम्हारा चित्र बनाऊंगा। अब मुझे पहले से अधिक अभ्यास हो गया है।"

"कौन सिखाता है तुम्हें?"

"गुरुजी सामने रखी चौकी, पलंग तथा माताजी के चित्र की नकल करने को कहते हैं और साथ ही ठीक भी करते हैं।"

"परन्तु अब मैं तुम्हें अपने आगार में नहीं बुलाऊंगी।"

"क्यों?"

"महारानीजी मुझे नौकरी से निकाल देंगी।"

"तो तुम मुझे अपनी कोठरी में मत बुलाओ, परन्तु मेरे आगार में तो

आ सकती हो। वहां तो मना नहीं किया।"

रामी को समझ आ गई। उसने कहा, "अच्छा, आऊंगी। कब आऊं?"

वास्तव में रामी को तारामीड़ बहुत सुन्दर और प्यारा लगता था और वह उसको गले से लगा तथा उसका मुख चूम रस पाती थी। उसे भी वह स्मरण आ गया। अब तारामीड आठ वर्ष का हो गया था और उसे मिहिरदत्त से पढ़ते हुए तीन वर्ष हो चुके थे। अब वह पहले से बहुत बातें सीख गया था। इसपर भी उसे बाल्यकाल में रामी से गले मिलने और उसका मुख चूमने की स्मृति थी और उसी स्मृति से प्रेरित हो वह उसे अपने आगार में बुलाने पर तैयार हो गया।

उसी सायंकाल रामी अवकाश के समय आई तो वह उसका चित्र बनाने का आग्रह करने लगा। रामी मानी और द्वार भीतर से बन्द कर नग्न हो उसके सामने बैठ गई।

रामी ने भी देखा कि वह पहले से अच्छा चित्र बनाने लगा है। साथ ही उससे गले मिलने का पहले से अधिक रस आने लगा है।

चित्र बनाने में रुचि तो गौण हो गई और रामी से आलिंगन अधिक रसयुक्त प्रतीत होने लगा। इस प्रकार सप्ताह में एक-दो दिन जब भी दोनों को अपने-अपने काम से अवकाश मिलता तो मिलते रहते थे।

रामी की लड़की मधु लगभग तारा की आयु की ही थी। अब तारा के मन में उसकी तस्वीर बनाने की इच्छा होने लगी। उसने मधु को अपने आगार में निमन्त्रण दिया तो वह एक दिन आ गई। तारा को वह अपनी मां से अधिक सुन्दर प्रतीत हुई। उसका चित्र जब तारा बनाने लगा तो रामी को भूल गया।

नरेन्द्रप्रभा की एक अन्य दासी राधा ने मधु को तारा के आगार में आते-जाते देखा तो महारानीजी से कह दिया। इसपर नरेन्द्रप्रभा स्वयं एक दिन वहां उस समय जा पहुंची जब मधु तारा के आगार में थी और मधु को नग्न तारा के सम्मुख बैठे और तारा को उसका चित्र बनाते देख चकित रह गई। महारानी ने डांट के भाव में कहा, "तारा! यह क्या हो रहा है?"

"मां ! चित्र बना रहा हूं।"

"गुरुजी से पूछकर बना रहे हो ?"

"नहीं मां ! सब कुछ उनसे पूछकर ही करना चाहिए क्या ?"

"परन्तु यह तो पढ़ाई है। इसमें तो उनसे पूछना ही चाहिए।"

"एक दिन मैंने मधु का एक चित्र उन्हें दिखाया था और उन्होंने उसे देख मना कर दिया था।"

"तब क्यों बना रहे हो ? उनका कहा तो मानना चाहिए। वह गुरुजी हैं।"

"परन्तु मां ! वह कहते थे कि चित्र तो अच्छा बना है।"

"वह तुम्हें उत्साहित करने के लिए कहते होंगे; परन्तु यह एक असुन्दर लड़की है।"

"तो सुन्दर लड़की कहां से मिलेगी ?"

"जब तुम बड़े हो जाओगे तो मिल जाएगी।"

"परन्तु मां, रामी तो कहती थी कि तुम देश-भर में सबसे सुन्दर स्त्री हो !"

"वह झूठ बोलती है।"

"मैं तुम्हारी तस्वीर भी बनाऊंगा।"

"नहीं, तुम मां को नंगा कर नहीं देख सकते और फिर महारानी को तो कदापि नहीं देख सकते।"

"तो किसको देखूं ?"

तारामीढ़ जब ग्यारह वर्ष का हुआ तो वह स्त्री-पुरुष में भेद समझने लगा था। इससे वह एक परिणाम पर पहुंचा कि यह सबके सामने बताने की बात नहीं। यह बात उसे रामी और मधु ने भी बताई थी।

अतः उसके मानसिक विकार में नया मोड़ आया। वह अब स्त्रियों के विषय में लुकाव-छुपाव करने लगा।

तारामीढ़ में एक गुण भी था। वह यह कि चन्द्र से छोटा होते हुए भी वह उससे तीव्र बुद्धि रखता था। इससे उसकी बुद्धि तो कभी-कभी गुरु मिहिरदत्त से भी आगे भाग जाती थी। एक दिन उसने गुरुजी से पूछा, "गुरुजी ! तान्त्रिक विद्या क्या होती है ?"

"यह कहां से सुन आए हो ?"

अब तारामीड़ कोई बात जो किसी स्त्री से सुनी हो, बताता नहीं था। इस कारण उसने बता दिया, "मेरे एक मित्र ने बताई है।"

"कौन है वह ?"

"कोई है गुरुजी ! आप उसे नहीं जानते। वह कहता था कि इस विद्या को जाननेवाला आकाश में ऐसे उड़ सकता है, जैसे पक्षी उड़ सकते हैं।"

"हां, यह तो है; परन्तु वह पक्षी की भांति मूर्ख भी बन जाता है।"

"यह कैसे ?"

"उड़ना वही चाहता है, जो पक्षी-समान बुद्धि रखता है और उसकी बुद्धि मनुष्य से बहुत छोटी होती है।"

"कैसे छोटी होती है ?"

"देखो, मनुष्य ने यह राज्यप्रासाद बनाया है। कोई तोता-मैना ऐसा महल नहीं बना सके।"

इसपर तारामीड़ गम्भीर हो विचार करने लगा। अब तक वह पन्द्रह वर्ष की वयस का हो चुका था। उसका बड़ा भाई चन्द्रपीड़ अब राज्य-कार्यालय में जा राज्य-कार्य सीखता था। वह सत्रह वर्ष से बड़ा हो चुका था। गुरु मिहिरदत्त उसे पृथक् पढ़ाता था। उसकी शिक्षा बदल गई थी। तारामीड़ की शिक्षा अभी भी गणित, भाषा, साहित्य इत्यादि चल रही थी।

तारामीड़ ने पूछा, "तो गुरुजी ! तान्त्रिक विद्या नहीं सीखनी चाहिए ?"

"विद्याएं तो सब सीखने के लिए ही होती हैं, परन्तु उस विद्या से क्या लाभ उठाया जाए, यह विचार करने की बात होती है। उसका सीखने से तो उड़नेवालों की भांति होना पड़ेगा।'

"तो फिर तान्त्रिक विद्या से क्या सीखना चाहिए ?"

"यह तुम जब बड़े हो जाओगे तो स्वयं जान जाओगे। इस विद्या से मनुष्य महान कार्य कर सकता है। उनके करने की सामर्थ्य इस विद्या से आती है।"

"तब तो मैं इसे अवश्य सीखूंगा।'

"परन्तु तारा ! सीखकर यदि भूमि पर ही विचरोगे तो मनुष्य बने रहोगे।"

"परन्तु गुरुजी, पशु भी तो भूमि पर ही विचरते हैं !"

"हां, परन्तु वे मनुष्यों की भांति नहीं विचरते। वे चार पांव होने से मुख नीचे कर चलते हैं।"

"वे ऐसा क्यों करते हैं ? वे मनुष्य की भांति सीधे खड़े होकर क्यों नहीं चलते ?"

"यह इसलिए कि उन्होंने पूर्वजन्म में कुछ ऐसे काम किए होते हैं जिनके परिणामस्वरूप उनको लज्जा आती है और वे मुख ऊंचा कर नेक काम करनेवालों की आंख से आंख मिलाकर नहीं चल सकते।"

"तो पूर्वजन्म में भी कुछ होता है ?"

"हां, इसी कारण तो तुम दोनों भाइयों में अन्तर है। चन्द्र गम्भीर विचारयुक्त कार्य करता है। अभी से महामात्य उसके कामों को पसन्द करने लगे हैं और अनेक विषयों में उससे सम्मति करते हैं। इधर तुम बिना विचार किए और अपने से कम पढ़े-लिखे लोगों के साथ मेलजोल रखते हुए विचरते हो। तुम कार्य पहले करते हो और विचार पीछे करते हो। तुम्हारा एक भाई ललित भी है। वह शूरवीर, बुद्धिमान और सन्तुलित मन रखता है। तुम तीनों एक ही पिता की सन्तान, परन्तु भिन्न-भिन्न स्वभाव और गुण रखते हो। यह पूर्वजन्म के कारण ही है।"

"अच्छा गुरुजी ! यह बताइए कि मेरी माताजी का विवाह कब हुआ था ?"

"यह किसलिए पूछते हो ?"

"इस कारण कि मैं भी विवाह करने की इच्छा करने लगा हूं।"

"किससे विवाह करोगे ?"

"इच्छा तो होती है कि संसार की सब स्त्रियों से विवाह कर लूं।"

"परन्तु इसके लिए तो परमात्मा की सामर्थ्य चाहिए।"

"तो परमात्मा भी विवाह करता है ?"

"नहीं तारा, सामर्थ्य से विवाह के अतिरिक्त भी काम किए जाते हैं। परमात्मा वे ही करता है। उदाहरण के रूप में पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, तारागण

इत्यादि परमात्मा ने ही बनाए हैं। ये तो विवाह करने से अधिक उपकारी काम हैं।"

"परन्तु एक मनुष्य ये काम तो कर नहीं सकता।"

"इसी कारण तो कहता हूं कि तुम सब स्त्रियों से विवाह नहीं कर सकते।"

"तो कितनियों से कर सकता हूं?"

"सब स्त्रियों को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है। एक मां के तुल्य होती हैं। इनमें वे सब जो अपने से पन्द्रह वर्ष बड़ी हों, मां होती हैं। दूसरी बहन होती है। इनमें वे सब जो अपने से पन्द्रह वर्ष बड़ी आयु से लेकर अपने से पन्द्रह वर्ष कम आयु तक वाली बहनें होती है और इनसे छोटी पुत्री होती हैं।"

तारामीड हंस पड़ा और पूछने लगा, "तब पत्नी कौन हो सकती हैं?"

"वह तो एक ही हो सकती है जिसका माता-पिता पत्नी बनाने के लिए चयन करें। वह प्राय अपनी आयु से छ:-सात वर्ष छोटी होनी चाहिए।"

"तो गुरुजी! मेरी इच्छा सबसे विवाह करने की क्यों होती है?"

"इसलिए कि तुम यह इच्छा विचाराधीन नहीं कर रहे। जो मनुष्य ऐसा करता है, वह मूर्ख कहलाता है।"

"पर मैं मूर्ख नहीं हूं।"

"परन्तु बातें तो वैसी ही करते हो। भला जो स्त्री पैंसठ वर्ष की वयस की होगी, उससे विवाह करके तो मूर्ख ही कहलाओगे।"

तारामीड समझ गया कि यह मूर्खता होगी। उसके मन में विवाह की इच्छा रामी से हुई थी। एक दिन वह उसके आगार में आई थी और वह उसको नग्न कर सदा की भांति उससे आलिंगन कर रहा था तो उसकी इच्छा सहवास करने के लिए होने लगी थी, परन्तु रामी ने इनकार कर दिया था। तब वह चौदह वर्ष की वयस का था।

इस बात को भी एक वर्ष से ऊपर हो चुका था। अब उसमें स्त्रियों का स्पर्श करने और उनसे आलिंगन करने की इच्छा अधिक होने लगी तो

मधु से वही इच्छा प्रकट करने पर, जिसपर रामी ने मना किया था, मधु ने बता दिया, "यह विवाह होता है। यह बड़ों की इच्छा से होना चाहिए।"

यह कारण था कि तारा ने गुरुजी से विवाह की चर्चा की थी। गुरुजी ने महारानी को बताया कि तारा अपने बड़े भाई से पहले विवाह की इच्छा करने लगा है।

अतः नरेन्द्रप्रभा ने दूसरे ही दिन प्रातः के अल्पाहार के उपरान्त तारामीड़ से पूछ लिया, "तुम विवाह की इच्छा करते हो ?"

"हां, मां ! किसने बताया है यह ?"

"तुम्हारे गुरुजी बता रहे थे। किससे विवाह करोगे ?"

"मां ! मधु से।"

"पर वह तो बहुत कुरूप है। वह रानी बनने के योग्य नहीं। मैंने तुम्हारे और चन्द्र के लिए बहुत सुन्दर लड़कियों का चयन किया हुआ है।"

"तब मैं उससे भी विवाह कर लूंगा।"

"कितने विवाह करोगे तुम ?"

पिताजी की भांति दो तो करूंगा ही। इच्छा तो और अधिक करने की भी होती है।"

"परन्तु कुरूप से विवाह करोगे तो अपने पिता की भांति कष्ट भोगोगे। उन्होंने अपने एक महामात्य के कहने से तुम्हारी विमाता से विवाह किया था और फिर जब मुझे उससे अधिक सुन्दर देखा तो मुझसे भी विवाह कर लिया। इसपर तुम्हारी विमाता मुझसे ईर्ष्या करने लगी और इस ईर्ष्या के कारण अपने पति की हत्या कराने से ही अपना कल्याण मानने लगी थी। उसका अपना कल्याण तो हुआ नहीं, परन्तु मेरा भारी अकल्याण हो गया है।"

"पर मां ! हमारी विमाता पद्मावती तो एक उच्च कुल की लड़की होने के कारण तुमसे ईर्ष्या कर सकती थीं, परन्तु एक कहार की लड़की भला किसी उच्च कुल की लड़की से ईर्ष्या कैसे करेगी ?"

नरेन्द्रप्रभा को युक्ति समझ आ गई। वह समझी थी कि पद्मावती ईर्ष्या इस कारण करती थी; क्योंकि वह एक मन्त्री की लड़की थी और

उसकी सौतन तो अति स्वरूपवान थी।

इस विचार पर वह चुप कर गई। इसपर भी वह परेशान थी कि उसका लड़का उच्छृंखल हो रहा है। अभी तक वह यह नहीं जानती थी कि मधु से उसकी बातचीत हुई है अथवा वह किस सीमा तक पहुंची है।

एक दिन रामी महारानी से कहने लगी, "महारानीजी ! मधु बिना विवाह के ही गर्भवती हो गई है।"

"सत्य ! किससे गर्भ हुआ है उसको ?"

"वह कहती है कि राजकुमार तारामीड़ से।"

नरेन्द्रप्रभा को तारामीड़ का कथन कि वह मधु से विवाह करेगा, स्मरण आ गया। इस कारण उसने कहा, "रामी, इसमें मैं क्या कर सकती हूं ? तुमने उसको इस मार्ग पर डाला है। इस कारण अब तुम जानो और तुम्हारा काम जाने।"

"महारानीजी ! यह ठीक नहीं हुआ। मैं तो स्वयं उसको प्यार कर अपना मनोरंजन करती थी। वह बहुत ही प्यारा लड़का है। परन्तु मेरा प्यार उससे वात्सल्यतापूर्ण ही था। मुझे विदित नहीं था कि तारा लड़की से भी वही व्यवहार करता है, जो मुझसे चाहता था। जब से मुझे विदित हुआ कि उसमें कौमार्य का आविर्भाव हो गया है, तो मैंने उसे मना कर दिया था।"

"तो तुम जानो।"

"वह तो है ही। इसका फल तो मैं ही भोगूगी। परन्तु आप इसमें हस्तक्षेप मत करिएगा।"

"मैं क्या हस्तक्षेप कर सकती हू ?"

"आप उसे लड़की से सम्बन्ध छोड़ने पर विवश मत करें।"

"मैं उसका विवाह एक क्षत्रिय वंश की अति सुन्दर लड़की से करने-वाली हू।"

"तो कर दीजिए। लड़की को इसमें आपत्ति नहीं। वह कहती है कि जो उसके भाग्य में है, उसे मिल जाएगा। वह अपने भाग्य से सन्तुष्ट रहेगी।"

"तब ठीक है। बहुत झगड़ा तब होता जब तारामीड ने कश्मीर-नरेश

बनना होता। मैं समझती हूं कि मेरा दुर्भाग्य अधिक अंश में इस कारण है कि चन्द्र का पिता कश्मीर-नरेश था।"

इस प्रकार आश्वासन मिल जाने पर रामी ने महारानी के चरण-स्पर्श कर धन्यवाद कर दिया।

४

मधु के गर्भ ठहर जाने पर रामी के पति मेघ ने रामी से कहा, "मैंने कहा था न कि लड़की को उससे मत मिलने दो।"

"परन्तु मैं तो जानबूझकर लड़की को वहां भेजती थी। वह एक दिन अपना बनाया एक चित्र दिखाने लगा तो मैंने उसे बताया था कि यह चौकियों और ऊखल-मूसल के चित्र क्या बनाते रहते हो ? इसपर वह पूछने लगा—तो किसका बताऊं ?—मैंने उसे कहा—संसार की सब वस्तुओं से सुन्दर मनुष्य है और मनुष्यों में स्त्री अधिक सुन्दर है।—इसपर उसने पूछा तो तुम बहुत सुन्दर हो ? मैंने कहा—हां, देखोगे मेरे सौन्दर्य को ?—यह मैंने जानबूझकर कहा था। उसने देखने की लालसा की तो मैंने अपना वक्षस्थल नग्न कर दिखा दिया। वह इसका चित्र बनाने लगा।

"समय पाकर वह मेरे पूर्ण नग्न शरीर का चित्र बनाने लगा। मैं उससे आलिंगन कर उसमें उत्तेजना उत्पन्न करने का यत्न करती रहती थी। कुछ मास हुए, वह मुझसे यौन-सम्बन्ध बनाने लगा तो मैं समझी कि बस अब और आगे नहीं जाने देना चाहिए। मैंने मना कर दिया। इसपर उसने यही बात मधु से कही तो वह मान गई और अब यह परिणाम हुआ है। यह मेरे पिछले आठ-नौ वर्ष के प्रयास का फल ही है।"

"परन्तु महारानीजी को पता चला तो वह हमें सेवा से निकाल देंगी।"

"मैंने उनसे बात की है। वह कहती हैं कि उन्होंने उसके लिए एक अति सुन्दर पत्नी ढूंढ़ी हुई है। मैंने उनको कहा है कि जो जिसके भाग्य में है, वह उसे मिल जाएगा। इसपर वह चुप कर रहीं। मैं यह समझी हूं कि अब शीघ्र ही तारा का विवाह होगा।"

"तब वह मधु को छोड़ देगा ?"

"यह अब आपके तान्त्रिक मित्र का काम है कि वह उसपर ऐसा सम्मोहन डाले कि तारा मधु को न छोड़े।"

मेघ गम्भीर विचार में निमग्न हो गया। कुछ देर बाद बोला, "मैं पण्डित विभूतिचरण से बात करूंगा।"

विभूतिचरण से मेघ ने अपनी पत्नी की योजना बताई तो वह बोला, "मित्र ! सब ठीक होगा। तुम अपनी लड़की को मेरे पास भेज दो। मैं उसे एक मंत्र बताऊंगा। वह उसका जप करेगी तो सिद्धि प्राप्त होगी।"

मेघ को अपने मित्र की नीयत पर सन्देह हुआ। परन्तु उसकी पत्नी रामी ने उसे विवश किया तो वह लड़की को लेकर पण्डित विभूतिचरण के घर जा पहुंचा।

विभूतिचरण ने पृथक् स्थान पर बैठ मधु को मन्त्र पढ़ाया और उसे उसके जप करने का ढंग बताया। विभूतिचरण ने बताया, "यह मन्त्र वशीकरणमन्त्र है। इससे राजकुमार तुम्हारी अंगुलियों पर नाचने लगेगा।"

अब मधु मन्त्र का जप करने लगी। उधर दोनों राजकुमारों के विवाह का प्रबन्ध होने लगा। राज्य-भर में इस विवाह के अवसर पर उत्सव मनाए जाने लगे। एक ही परिवार की दो कन्याएं दोनों राजकुमारों के साथ विवाह दी गईं।

चन्द्रमीड़ की पत्नी कमलावती सोलह वर्ष की वयस की थी और तारामीड़ की पत्नी कमलावती की बहन चम्पावती तेरह वर्ष की थी। विवाह होने के समय तक मधु के लड़का उत्पन्न हो चुका था। यद्यपि मधु प्रसव के उपरान्त दुर्बल और ओजविहीन हो चुकी थी, परन्तु तारामीड़ जब अपनी नवीन पत्नी की तुलना मधु से करता तो उसे वह फीकी प्रतीत होती थी। वह इसका अर्थ नहीं समझ सका था। उसकी मां कहती थी कि चम्पा मधु से एक सौ गुणा अधिक सुन्दर है। उसका बड़ा भाई चन्द्रमीड़ भी कहता था, "तारा, तुम्हारी पत्नी मेरी पत्नी से अधिक सुन्दर है।"

गुरु मिहिरदत्त भी यही कहता था; परन्तु उसकी आंखों को वह मधु से पचास प्रतिशत से अधिक नहीं प्रतीत होती थी। अब वह मधु को अपनी

सेवा के लिए अपने आगारों में ले आया था।

मन्त्र बोलते हुए मधु एक लकड़ी का टुकड़ा एक कटोरे में जल डालकर रखती थी। पीछे वह लकड़ी निकालकर पृथक् छुपाकर रख छोड़ती थी। उसमें से आधा जल वह नित्य प्रातः जब तारामीड़ शौच जाने से पूर्व जल पीता तो उसे पिला देती और शेष आधा जल वह स्वयं पीती थी। जिस दिन से तारा वह जल पीने लगा था, वह अपनी दृष्टि और सब घरवालों की दृष्टि में अन्तर स्पष्ट देख चकित था। तारामीड़ समझता था कि वह ठीक देखता है और उसके घरवाले उसे मधु से विरक्त करने के लिए ऐसा कहते हैं।

इस विरक्तता का प्रभाव सबसे पहले उसकी पत्नी कोपता चला। वह बालिका मात्र थी। इसपर भी उसकी बहन कमलावती जब उससे उसके पति के व्यवहार के विषय में बात पूछती तो वह बता देती कि वे दोनों पृथक्-पृथक् पलंग पर सोते हैं और उसका पति उससे स्वेच्छा से प्यार नहीं करता। वह कभी उसके पलंग पर जाने का हठ करती है तो वह विवश हो जाता है और उसको वहां सहन करता है।

कमलावती और तारामीड़ की मां यह समझती थी कि चम्पा अभी अल्पायु है। इस कारण यह विरक्तता है। इससे वह चम्पा के कुछ और बड़े होने की प्रतीक्षा करने लगी।

इस प्रतीक्षा में दो वर्ष निकल गए और मधु के पुनः गर्भ ठहर गया। इसपर घरवालों को विस्मय हुआ। नरेन्द्रप्रभा ने मधु से पूछा, "यह गर्भ किससे प्राप्त किया है?"

"आपके सुपुत्र राजकुमार से।"

इस समय तक चन्द्रमीड़ का राज्याभिषेक हो चुका था और वह महाराज कहलाने लगा था। नरेन्द्रप्रभा अब राजमाता थी।

नरेन्द्रप्रभा ने तारामीड़ से मधु की बात बताई तो उसने इसका समर्थन कर दिया। मां ने पूछा, "अपनी पत्नी के रहते तुम कैसे एक असुन्दर और कृष्ण वर्ण की मधु से यह व्यवहार कर सकते हो? चम्पा भुवनसुन्दरी है। इस समय जो उसे देखता है, मुझे ऐसी बहू प्राप्त करने पर भाग्यशाली कहता है। जब दो वर्ष पूर्व रामी ने अपनी लड़की को तुम्हारी सेवा के लिए

नियुक्त करने को कहा था तो मैं समझी थी कि तुम दोनों की तुलना कर स्वयं समझ जाओगे कि रामी ने तुमसे छलना की है। परन्तु तुमने तो मेरी सब धारणाओं को मिथ्या सिद्ध कर दिया है। स्वच्छ, मधुर, सुवासित प्रेम को छोड़ तुम गन्दी नाली में डुबकियां लगाने लगे हो।"

तारामीड़ ने कहा, "मां! रुचि अपनी-अपनी है। इसपर भी मैंने चम्पावती का कभी तिरस्कार नहीं किया। फिर भी उसके गर्भ नहीं ठहरा और मधु अब दूसरी बार गर्भवती हो गई है। इसमें मेरा क्या दोष है?"

नरेन्द्रप्रभा और कमलावती तथा चन्द्रमीड़ इस विकृति पर विचार ही कर रहे थे कि न्यायालय में एक विशेष अभियोग का निर्णय हो रहा था।

इन दिनों न्यायाधीश एक ब्राह्मण योगानन्द पाण्डेय था। अभियोग एक ब्राह्मणी सिद्धेश्वरीदेवी ने उपस्थित किया था। उसने न्यायाधीश के सम्मुख यह कहा था, "एकाएक मेरे पति का देहान्त हो गया है। भिषगाचार्य, जो उनकी चिकित्सा किया करते थे, कहते हैं कि किसी प्रकार के विष देने के लक्षण नहीं। उनका देहान्त हृदय की गति रुक जाने से हुआ है। परन्तु मुझे सन्देह है कि उनके एक मित्र ने तान्त्रिक विद्या से उनकी हत्या की है।"

ब्राह्मणी ने अपने पति के मित्र का नाम बताया विभूतिचरण। इसपर विभूतिचरण और भिषगाचार्य की साक्षी हुई। विभूतिचरण ने बताया, "रामेश्वर पाण्डेय मेरा मित्र था। सब मित्रवर्ग जानते हैं कि हम दोनों अभिन्न मित्र थे। इस कारण मित्र की हत्या करने में मेरा किसी प्रकार का हित नहीं था।"

भिषगाचार्य ने बताया, "विष देने के जो-जो लक्षण हमारे शास्त्र में लिखे हैं, वे हुत में दिखाई नहीं दिए। इस कारण मैंने हुत की पत्नी से यह कहा है कि उसके पति की मृत्यु विष से नहीं हुई। शेष मैं कुछ नहीं जानता।"

ब्राह्मणी सिद्धेश्वरीदेवी से पूछताछ पर उसने बताया, "मेरा सन्देह विभूतिचरण पर इस कारण है कि पाण्डेयजी की मृत्यु से कुछ दिन पूर्व वह मुझसे प्रेम प्रकट करने लगा था। इससे मैं समझती हूं कि अपने प्रेम का मार्ग साफ करने के लिए ही उसने अपनी तान्त्रिक विद्या से यह कुकृत्य

किया है।"

न्यायाधीश ने विभूतिचरण को दोषमुक्त करते हुए यह निर्णय दिया कि पण्डिताइन सिद्धेश्वरीदेवी का यह सन्देह-मात्र है। यह कोई प्रमाण नहीं है। इससे विना पुष्ट प्रमाण के वह किसीको दण्डित नहीं कर सकता।

न्यायाधीश के इस निर्णय पर ब्राह्मणी सिद्धेश्वरीदेवी ने महाराज चन्द्रमौड़ के सम्मुख याचिका कर दी। उसने याचिका में यह कहा कि उससे न्याय नहीं किया गया।

इस याचिका की सुनवाई करने के लिए विष्णुदत्त महामात्य को नियुक्त किया गया। विष्णुदत्त की निर्भीक न्यायकर्ता होने की ख्याति थी। इस कारण पण्डिताइन ने स्वयं महामात्य के सम्मुख उपस्थित होकर यह कहा, "मुझे विभूतिचरण के तान्त्रिक होने का विश्वास है। उसने मुझपर भी अपना वशीकरणमन्त्र चलाया था और मैं मंत्र से विवश होकर उससे सम्वन्ध बना बैठी थी। परन्तु जब मुझे यह ज्ञात हुआ कि विभूतिचरण अपनी विद्या के बल से मुझे अपने वश में किए हुए है तो मैं उसकी विद्या के प्रभाव को विलीन करने का यत्न करने लगी और इसमें मुझे सफलता मिली। मैंने अपना विभूतिचरण से सम्वन्धविच्छेद कर लिया। फिर एक दिन रात मेरा पति अति प्रसन्नवदन मेरी ही शय्या पर सोया और प्रातः नहीं उठा। उस रात मेरा पति विभूतिचरण से मिलकर आया था।"

विष्णुदत्त तंत्र-विद्या में विश्वास नहीं रखता था। वह इस विद्या के पीछे औषधि-उपचार मानता था। इस कारण उसे सिद्धेश्वरीदेवी के कथन पर इतना संकेत तो मिला कि विभूतिचरण ने यह हत्या की प्रतीत होती है, परन्तु यह सन्देह सिद्धेश्वरीदेवी के पूर्ण कथन के उपरान्त भी प्रमाणरहित था।

विष्णुदत्त अपने सन्देह की पुष्टि करना चाहता था। उसने सिद्धेश्वरीदेवी से पूछा, "देवी! तुम्हारा पण्डित विभूतिचरण से कितने काल तक सम्वन्ध रहा है?"

"श्रीमान्, लगभग छः मास तक।"

"और इस काल में तुम्हें गर्भ स्थित नहीं हुआ?"

"पण्डित विभूतिचरण कहता था कि यदि मैं उससे अभिमंत्रित जल

पीती रहूंगी तो गर्भ नहीं ठहरेगा। इस कारण उसमे सहवास के पूर्व मैं वह अभिमन्त्रित जल पीती थी और छः मास तक हम बिना किसी प्रकार के प्रभाव के यह कुकृत्य करते रहे।

"मुझे एक दिन यह सन्देह हुआ कि उस अभिमन्त्रित जल के पीने से ही मैं उसके वश मे हूं, तो मैंने अपना सन्देह विभूतिचरण से बताया। वह बक गया और उसने कहा कि मेरा सन्देह ठीक ही है।

"पण्डित विभूतिचरण ने एक अन्य प्रमाण भी अपनी इस विद्या का दिया है। उस प्रमाण से ही मैं विश्वास से यह कह रही हूं कि मेरे पति की हत्या इसी तान्त्रिक ने मन्त्रबल से की है।"

विष्णुदत्त ने पूछा, "और वह प्रमाण क्या है ?"

सिद्धेश्वरीदेवी का कहना था, "श्रीमान्! यदि आप इस बात को कभी किसीसे न कहने का और मेरा नाम बीच मे न लाने का वचन दें, तो मैं यह रहस्य भी बता सकती हू।"

इसपर विष्णुदत्त ने वचन दे दिया। साथ ही यह कह दिया, "परन्तु देवी, यदि उस कुकृत्य से किसीकी हत्या का सन्देह हुआ तो मैं उस व्यक्ति के जीवन की रक्षा का यत्न करने की छूट चाहता हू।"

"हां, मेरा नाम बीच मे लाए बिना आप किसीकी भी जैसे चाहें, रक्षा कर सकते हैं।"

विष्णुदत्त ने वचन दिया तो सिद्धेश्वरीदेवी ने बताया, "एक मेघ नाम का कहार राज्यप्रासाद मे सेवा-कार्य करता है। उसकी लड़की मधु राज्यप्रासाद के किसी वरिष्ठ व्यक्ति पर विभूतिचरण के मन्त्र का प्रयोग कर रही है। विभूतिचरण ने बताया है कि वह सफल हो रही है।

"श्रीमान्! इस समाचार के उपरान्त मैंने वह जल, जो विभूतिचरण यह कहकर मुझे पिलाता था कि उसके पीने से गर्भ स्थित नहीं होगा, पीना छोड दिया। परिणाम यह हुआ कि मुझे अपने व्यवहार का अधर्म-युक्त होना समझ आने लगा। मैंने विभूतिचरण के घर जाना छोडा तो एक दिन मेरे पति तान्त्रिक विभूतिचरण के घर से भोजन कर घर पर आए। उस समय वे बहुत प्रसन्न तथा सब प्रकार से स्वस्थ थे और उस रात सोने पर प्रातः उठे नहीं। वह सोए-सोए ही कलेवर छोड़ गए।"

विष्णुदत्त ने सिद्धेश्वरीदेवी से कहा, "तुम्हारी सूचना की जांच की जाएगी। अतः तुम्हें एक मास के उपरान्त बुलाया जाएगा और तुम्हारी याचिका पर निर्णय सुनाया जाएगा।"

५

विष्णुदत्त को चम्पावती की समस्या का ज्ञान था। कमलावती और चम्पावती के पिता महामात्य विष्णुदत्त के परम मित्र थे। दोनों लड़कियों का राजकुमारों से विवाह उसकी ही प्रेरणा से हुआ था। वह जानता था कि उसके मित्र की छोटी लड़की सब प्रकार से सुन्दर और योग्य होते हुए भी अपने पति से तिरस्कार पा रही है। अतः उसे सन्देह हुआ कि सिद्धेश्वरीदेवी ने कदाचित् तारामीड़ और उसकी पत्नी के विषय में ही यह कहा हो।

अतः वह अपने सन्देह के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए राज्यप्रासाद में राजमाता के पास जा पहुंचा। राजमाता की सेवा में उपस्थित हो उसने सिद्धेश्वरीदेवी की कथा बताई और अपना सन्देह वर्णन किया तो नरेन्द्रप्रभा ने चम्पावती को बुला लिया और उससे पूछा, "बहू! मेघ को जानती हो ?"

"नहीं, माताजी !"

"मेघ की लड़की मधु के विषय में क्या जानती हो ?"

"तो मधु के पिता का नाम मेघ है ? माताजी; मैं मधु के विषय में कुछ नहीं जानती। हां, वह हमारी सेवा करती है। वह प्रातः से रात तक आपके सुपुत्र और मेरी सेवा में लीन रहती है।"

"उसको दूसरी बार गर्भ ठहर गया है।"

"हां, मधु ने बताया है।"

"वह किससे हुआ है ?"

"मधु ने बताया है कि आपके छोटे पुत्र से है।"

"तो वह तुम जैसी सुन्दर पत्नी को छोड़ उस सामान्य रूपरेखावाली लड़की को किसलिए प्रयोग करता है ?"

"यह मैं नहीं जानती। प्रत्यक्ष रूप में तो कोई कारण प्रतीत नहीं होता। मैं आपके सुपुत्र को प्रसन्न रखने के लिए सदा यत्न करती रहती हूं।"

"अच्छा, यह बताओ कि तुम अथवा तारा उसके हाथ से कुछ खाते-पीते हो क्या?"

इसपर चम्पावती ने विचार किया और प्रातः से साय तक का सब खाने-पीने का वृत्तान्त बता दिया। उसने बताया, "माताजी! बहुत प्रात.काल मधु आपके पुत्र के लिए जल लाती है। वह उसे पीने के उपरान्त शौच जाते हैं। प्रात काल का अल्पाहार वह ही हमें खिलाती है। मध्याह्न के समय आपके पुत्र राज्य-कार्यालय में काम पर चले जाते हैं। मध्याह्न के समय वह अपनी मां के घर जाती है और मध्याह्नोत्तर आती है। उस समय का अल्पाहार वह खिलाती है। रात का भोजन तो हम अकेले ही खाते हैं। कभी आप और आपके बड़े सुपुत्र बहन कमलावती के साथ आए होते है तो वे भी हमारे साथ ही खाते हैं। उस समय मधु वहां नहीं होती।"

नरेन्द्रप्रभा ने कुछ विचार कर उसे बताया, "अच्छा, एक बात करो। प्रात. जब वह जल लाया करे तो उस जल को तारा के पीने से पहले बदल दिया करो। परन्तु देखो, यह मधु को पता न चले। उसमें जल वहां रखा लिया करो और जब वह चली जाए तो जल बदल दिया करो। इस विषय में तारा को भी सन्देह न हो कि कुछ बदला गया है। दोनों समय के अल्पाहार खिलाने के लिए मैं एक अन्य सेविका तुम्हारी सेवा में भेज दूंगी। मधु को कहना कि उसके गर्भ है। इस कारण उसे कष्ट देना ठीक प्रतीत नहीं होता।"

"माताजी! बात क्या है?"

"तुम यह पन्द्रह दिन तक करो और तब मैं तुम्हें बताऊंगी। मैं भी एक परीक्षण कर रही हूं और नहीं जानती कि उस परीक्षण का क्या परिणाम होगा। मैं इतना चाहती हूं कि यह बात तुम अपने पति को पता न लगने दो और न ही मधु को सन्देह होने दो कि उसकी छून में बचा जा रहा है।"

चम्पावती कुछ नहीं समझी। परन्तु वह इतना जानती थी कि महा-

नी उसके हित में ही किसी प्रकार का परीक्षण कर रही है।

अतः अगले दिन से ही प्रातःकाल जब मधु पानी लाई तो तारामीड़ भी सो रहा था। ऐसी अवस्था में वह गिलास पलंग के समीप रखी चौकी पर रख चली जाया करती थी। उस दिन भी वह रखकर गई तो चम्पावती ने स्वयं उठ गिलास बदल दिया। साथ ही जल भी बदल दिया।

पहले दिन ही परिणाम हुआ। रात को तारामीड़ देर तक चम्पावती से बातें करता रहा। चम्पावती भी राजमाता के परीक्षण में रुचि लेने लगी थी। उस दिन राजमाता की निजी सेविका सुन्दरी आ गई और अल्पाहार खिलाने लगी। मधु प्रातः के अल्पाहार के समय आई तो चम्पावती ने कह दिया, "राजमाताजी को तुम्हारी अवस्था का ज्ञान हो गया है और उनका कहना है कि तुम्हें एक वर्ष तक आराम करना चाहिए। तभी तुम्हारा बच्चा राजकुमारों की भांति सुन्दर और सबल हो सकेगा।"

मधु मान गई और उसने सेवा-कार्य सुन्दरी के हाथ में दे दिया। इस पर भी वह प्रातःकाल जल लाती रही। सुन्दरी रात को वहां नहीं रहती थी और मधु प्रातः की सेवा करती रही। चम्पावती वह जल बदलती रही। दूसरे दिन से ही तारामीड़ के व्यवहार में अन्तर आने लगा। एक सप्ताह के उपरान्त चम्पावती को पति का सुख प्राप्त होने लगा। पहले तो कभी महीने में एकआध वार दोनों में सहवास होता था और अब सप्ताह में दो वार ऐसा अवसर मिला।

पन्द्रह दिन के उपरान्त राजमाता ने चम्पावती को अपने आगार में बुलाकर पूछा, "तो वह किया है, जो मैंने कहा था ?"

"हां, माताजी !"

"और कुछ परिवर्तन अनुभव करती हो ?"

"बहुत बड़ा अन्तर देखती हूं। आज तो उन्होंने मधु को स्वयं वह दस मास की छुट्टी दे दी है कि उसे तब आना चाहिए, जब वह स[...] स्वस्थ हो जाए।

"मधु ने कहा भी कि अभी तो वह सर्वथा स्वस्थ है और रानी[...] सेवा कर सकती है, परन्तु आपके पुत्र ने कहा—माताजी की आज्ञा[...] तुमको आराम करना चाहिए।—इससे वह निराश हो अपनी म[...]

चली गई है।"

"तो ऐसा करो। अब तुम तारा के जागने से पहले उठा करो और स्वयं उसके लिए जल भरकर उसके पलंग के पास चौकी पर रख दिया करो, जिससे उसको मधु का अभाव अनुभव न हो। और एक सप्ताह के उपरान्त पुनः तारा के व्यवहार की सूचना देना।"

नरेन्द्रप्रभा ने महामात्य विष्णुदत्त को बुलाकर परीक्षण का फल बताया। विष्णुदत्त सब समझ गया और उसने विभूतिचरण को पकड़कर उसके सामने उपस्थित करने की आज्ञा दे दी।

राज्य-सुभट्ट उसे पकड़ने गए और खाली हाथ लौट आए। सुभट्टों के नायक ने बताया, "महाराज! विभूतिचरण और उनके घर के सब प्राणी लापता हैं। घर को ताला लगा हुआ है।"

इसपर विष्णुदत्त ने तारामीड को बुलाया और अपने समीप बिठाकर कहा, "राजकुमार! तुम्हारा मेघ की पुत्री मधु से क्या सम्बन्ध है?"

"श्रीमान्!" तारामीड ने लज्जा से लाल होते हुए कहा, "किसीने मेरी शिकायत की है क्या?" तारामीड का विचार था कि उसके श्वसुर ने महामात्य को कुछ कहा हो सकता है।

महामात्य विष्णुदत्त का कहना था, "किसीने शिकायत तो नहीं की। राजमाताजी ने बताया है कि मेघ की लड़की मधु के अविवाहित होने पर भी उसको दूसरा गर्भ ठहर गया है।

"मैंने राजमाताजी को कहा है कि यह अपराध राजदण्ड के योग्य नहीं। बिना वैध विवाह के सन्तान हो तो राज्य किसीको, पुरुष को अथवा स्त्री को, दण्डित नहीं कर सकता। हां, बलात्कार हो तो अवश्य दण्ड का विषय हो जाता है। इसपर राजमाता ने बताया है कि मधु की मां कहती है कि उसे गर्भ तुमसे ठहरा है।"

"तो यह बात है! मेरी शिकायत माताजी ने की है?"

"यह शिकायत नहीं राजकुमार! एक वस्तुस्थिति का वर्णन कर उसमें राज्य के कर्तव्य की ओर संकेत किया है।"

"मधु की मां की बात सत्य है। मेरा मधु से सम्बन्ध अपने विवाह से पहले का है। परन्तु महाराज! मैं अब यह सम्बन्ध रखना नहीं चाहता।"

"क्यों ? क्या राजमाता ने विवश किया है ?"

"नहीं महाराज ! किसीने भी विवश नहीं किया। न सम्बन्ध बनाने के लिए और न ही सम्बन्धविच्छेद करने के लिए।"

"तो फिर क्या बात हुई है, जिससे इतना पुराना सम्बन्ध छोड़ रहे हो और फिर वह भी जब वह गर्भ से है ? पता चला है कि उसकी पहली सन्तान तुम जैसी ही गौरवर्णीय और सुन्दर है ?"

"ऐसा ही उसकी मां कहती है। परन्तु श्रीमान् ! वह है नहीं। न तो मेरे जितनी गौरवर्णीय है और न ही मेरे जैसी सुन्दर। उसकी रूप-राशि अपनी मां पर गई है।"

"सत्य ! मुझे किसीने उलट बात बताई है।"

"मुझे अब एकाएक कुछ ऐसा समझ आने लगा है कि मैं भारी भूल कर रहा था। उस सामान्य रूप-रंग की स्त्री को पत्नी बना रहा था और उस छोटी-छोटी आंखोंवाले लड़के को अपना पुत्र समझ रहा था।"

"और अब क्या प्रतीत होने लगा है ?"

"कह नहीं सकता कि क्या हुआ है। मुझे अपनी रानी में विशेष सौन्दर्य का अस्तित्व दिखाई देने लगा है। आज से बीस दिन पहले जो सुन्दर था, वह कुरूप और नीरस दिखाई देता था और अब इससे उलट समझ आने लगा है।"

"तो तुम इससे सुखी हो ?"

"बहुत श्रीमान् ! परन्तु आपके मुख पर मुस्कराहट देख ऐसा प्रतीत होता है कि आपने ही कुछ जादू किया है।"

"मैं जादू-टोने में विश्वास नहीं रखता। मैं औषधियों में ऐसा करने की शक्ति का होना जानता हूं। ऐसी औषधियां हैं, जो बुद्धि को सात्त्विकी कर देती हैं और कुछ जो बुद्धि को तामसी कर देती हैं। कुछ ऐसा समझ आया है कि कोई तुम्हें कुछ ऐसी वस्तु खिला रहा था, जो तुम्हारी बुद्धि को तामसी कर रही थी। तामसी बुद्धि धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म समझने लगती है। वह दिन को रात और रात को दिन मानने लगती है।"

"आपके कहने का क्या यह अभिप्राय है कि मुझे किसी औषधि का सेवन कराया जाता रहा था, जिससे मेरी बुद्धि तामसी हो रही थी ?"

"हां, मेरा यही अभिप्राय है।"

"कौन था वह, जो मुझे ऐसी घातक वस्तु खिला रहा था ?"

"राज्य ने उसका नामधाम जान लिया है और उसको पकड़ने की आज्ञा हो गई है, परन्तु वह कहीं लापता हो गया है। मैं उसे पकड़ने का यत्न कर रहा हूं।"

"परन्तु वह कौन था जो ऐसा कर रहा था, और वह किस समय तथा कैसे करता था ?"

"अवश्य इसमें उसका लाभ रहा होगा। परन्तु यह तो जब वह पकड़ा जाएगा, तब पता करने का यत्न किया जाएगा।"

विष्णुदत्त ने राजमाता को सब वृत्तान्त बताया तो राजमाता ने कहा, "बहुत दुष्ट है मधु।"

"महारानीजी ! यह मधु का दोष प्रतीत नहीं होता। वह तो अनजाने में यह कर रही प्रतीत होती है। इसपर भी मैं चाहूंगा कि आप मधु से सब बात जानिए कि वह ऐसा क्यों करती थी और किसके कहने पर करती थी।"

विष्णुदत्त ने सिद्धेश्वरी देवी को बुलाकर अपनी जांच का परिणाम बताया। साथ ही यह भी बताया कि पण्डित विभूतिचरण राज्य छोड़ भाग गया प्रतीत होता है।

सिद्धेश्वरीदेवी ने कहा, "महाराज ! मैं इस दुष्ट तान्त्रिक को दण्ड दिलवाने के लिए जीवित थी। इसी कारण अपने पाप-कर्म की बात भी आपको बता दी थी। राज्य इतना दुर्बल सिद्ध हुआ है कि अपराधी को पकड़ दण्ड नहीं दे सका। अतः मैं अब सती हो जाऊंगी। मेरे लिए इस संसार में अब कुछ करने को नहीं रह गया।"

विष्णुदत्त उस ब्राह्मणी का मुख देखता रह गया। ब्राह्मणी ने आगे कह दिया, "श्रीमान् ! आपको सावधान रहना चाहिए। जिस राज्य में अपराधी राज्य को चकमा दे जाते हैं, वे राज्य की जड़ों में तेल देते ही दिखाई देते हैं। वहां अराजकता व्यापक रूप में प्रकट होगी और फिर छोटे-बड़े सब अराजकता में दुःख का भोग करेंगे।"

विष्णुदत्त इसे शाप समझ कांप उठा। उसे स्मरण आ गया कि उसने

व्यर्थ मनोद्गारों के अधीन नीलकण्ठ को जीवित छोड़ दिया था और परिणाम यह हुआ था कि प्रतापादित्य की हत्या हुई थी और पुनः भूल की तो वह भाग गया और अव किसी राज्य में फल-फूल रहा है।

यह अपराधी भी भाग गया है। इस कारण यह भी किसी प्रकार का उपद्रव कर सकता है। विष्णुदत्त समझता था कि शरीर की हत्या करनेवाले से अधिक दोपी वह है, जो मन को दूपित करता है और मन को दूपित करनेवाले से अधिक घृणित कार्य वह करता है, जो बुद्धि को भ्रष्ट करता है। वुद्धि से तो जीवात्मा का स्वभाव भी प्रभावित होता है।

उसकी चिन्ता का यही कारण था। वह अपनी भूल को सुधारने का यत्न करने लगा। इसके लिए उसने दो दिशाओं में प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। एक तो यह कि विभूतिचरण की खोज विदेशों में जारी रखी और दूसरा वह तारामीड़ की वुद्धि को स्वच्छ करने और पूर्व औपधि के वचे-खुचे प्रभाव से वचाने का यत्न करने लगा।

परन्तु विप-वृक्ष का मूल विभूतिचरण नहीं था। वह कहीं अन्यत्र था। राजाओं का दोप प्रजा में व्यापक प्रभाव उत्पन्न करता है। प्रजा के किसी घटक का प्रभाव तो सीमित क्षेत्र में होता है। राजा देश की प्रजा में व्यापक होने से उसके दोपों को प्रजागण सद्गुण मान स्वीकार करने लगती है।

दोप आरम्भ हुआ था देवलोक की एक भूली-भटकी देवी से। वह मानवलोक में जन-कल्याण करने आती थी, परन्तु अपनी दिव्य शक्ति से मानवों से उच्छृंखलतापूर्ण कार्य कराने की प्रेरणा देने लगी। उसने एक को वर दिया था कि वह सदा जुआ खेलने में विजयी होगा और फिर अपनी शक्ति से उसे विजयी वनाती रही।

तदनन्तर वह एक अन्य के त्याग और तपस्या से प्रभावित हो उसे ऐसा वर दे वैठी, जिसके वह योग्य नहीं था। दुर्भाग्य से आत्महत्या के उपरान्त वह कश्मीर राज्य के नरेश के घर उत्पन्न हो गया। यह सव उस विकृत वुद्धिवाली देवी के प्रभाव से ही हुआ था।

वह देवी अपने वर से वंधी हुई रणादित्य की भार्या वनने चली आई, परन्तु देवलोक के प्राणी न तो सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं और न ही देव-

लोक में रहने की अवधि को न्यूनाधिक कर सकते हैं। वे अपने पुण्यकर्मों के फल से प्राप्त देवलोक का भोग करते हुए ही मानवलोक में भार्या बनकर अभिनय करती रही। इस कारण न तो वह रणादित्य को सन्तान दे सकी और न ही वह मानवलोक के प्राणी की भांति उसमें पति-पत्नी का सम्बन्ध बना सकी। वह रणादित्य से खिलवाड़ करती रही।

इसीका परिणाम हुआ कि कश्मीर राज्य पर अनाचार कर्म का राज्य स्थापित हुआ और यह सब हुआ, जिसका वर्णन चल रहा है।

यदि राजा तक ही यह मारकाट रहती तो कुछ अधिक हानि न होती, परन्तु एक नरेश राज्यरूपी ऊंची लाट पर खड़ा पूर्ण राज्य में प्रकाश की भांति सबका पथ-प्रदर्शक बन जाता है और दूषित व्यवहारवाला नरेश प्रजा को मिथ्या पथगामी ही बना जाता है।

यही हुआ। जब राज्य-परिवार में और राज्यप्रासाद में ही हत्याएं होने लगीं तो फिर इनका चलन प्रजा में भी फैलने लगा।

कल्हण अपने इतिहास की विवेचना महाराज जयचन्द को सुना रहा था। जयचन्द ने पूर्ण कथा सुनकर पूछ लिया—तो पण्डितवर ! फिर क्या हुआ ? क्या विभूतिचरण किसी अन्य राज्य में जा वैसा ही उपद्रव करने लगा था ?

नहीं महाराज !—कल्हण ने अपने इतिहास का अगला पृष्ठ सुनाना आरम्भ कर दिया। उसने कहा—तान्त्रिक-विद्या एक तीक्ष्ण खड्ग की भांति होती है। यह जिसके हाथ में चली जाए, उसकी इच्छानुसार चलने और उसकी रुचि अनुसार शुभ अथवा अशुभ कार्य करने लगती है।

तो ये जादू-टोने भी कोई विद्या है ?—महाराज जयचन्द ने पूछ लिया।

कल्हण का कहना था—हां, महाराज ! इसका घना सम्बन्ध औषधि-विज्ञान और मनोविज्ञान से है। सामान्य औषधियां शरीर के वात, पित्त, कफ को शुद्ध अथवा दूषित करते हैं। वात, पित्त, कफ का प्रभाव शरीर पर होता है और शरीर रुग्ण होता है तो मन और बुद्धि, जिसे सामान्य भाषा में मस्तिष्क कहते हैं, पर भी होने लगता है; परन्तु तान्त्रिक औषधियां शरीर के वात, पित्त और कफ को अछूता छोड़ सीधा मन और बुद्धि पर

प्रभाव डालती हैं। मन और बुद्धि बहुत ही सूक्ष्म (अणुवत्) यन्त्र हैं और इनपर प्रभाव उत्पन्न करने के लिए अतिसूक्ष्म औषधियां ही कार्य कर जाती हैं। महाराज ! विभूतिचरण और उससे पहले नीलकण्ठ पर दया अथवा असावधानी का प्रभाव यह हुआ कि वे संसार में उपद्रव करने के लिए जीवित रह गए। नीलकण्ठ अपने को इस योग्य समझता था कि उसकी विद्या ऐसी है कि वह सब संसार की आंखों में धूल झोंककर सबको मूर्ख बना सकता है। दोनों अपने पूर्वजन्म के कर्मों और इस जन्म की दूषित शिक्षा से प्रभावित उथल-पुथल मचाने का यत्न कर रहे थे। उनके अपराध का दण्ड मृत्यु था और यह उनको दिया नहीं गया।

६

विभूतिचरण राज्य के किसी अप्रख्यात गांव में जाकर छुप गया। अपनी विद्या से वह छुटपुट चमत्कार करता हुआ जीवन-निर्वाह कर रहा था। संयोग से उसी गांव में नीलकण्ठ अपनी वृद्धावस्था व्यतीत कर रहा था। उस समय नीलकण्ठ के परिवार के लोग उसके पास आए हुए थे।

नीलकण्ठ का एक लड़का था रजनीश। वह इसी गांव की एक लड़की से विवाह कर अपना जीवन शान्ति से व्यतीत कर रहा था। उसका छोटा भाई सतीश अभी अविवाहित था। उसके लिए गांव में से ही कई सम्बन्धों के प्रस्ताव आ चुके थे, परन्तु वह मानता नहीं था। नीलकण्ठ ने उसके विवाह की चिंता इस विचार से छोड़ रखी थी कि कदाचित् वह अपने को विवाह के अयोग्य पाता है। विभूतिचरण ने गांव में अपना तान्त्रिक-कार्य आरम्भ कर रखा था। श्रीनगर से पर्याप्त धन वह अपने साथ लाया था और उस गांव में अपना निर्वाह सुगमता से चला रहा था। गांव में उसे अपने कार्य से कुछ अधिक प्राप्त नहीं होता था। इसपर भी उसका तान्त्रिक-कार्य विख्यात हो रहा था। वह पड़ोस के गांवों में भी योग्य तान्त्रिक के नाम से विख्यात हो रहा था।

एक दिन नीलकण्ठ के छोटे लड़के सतीश ने अपने पिता को बताया, "बाबा ! यहां एक अति योग्य भिषगाचार्य आया है और वह मानसिक

रोगों का चिकित्सक विख्यात हो रहा है।"

"कहां से आया है ?"

"कहता है कि कुस्माकुर देश से।"

"अर्थात् जहां केसर उत्पन्न होता है ?"

"हां, बाबा !"

"और तुम्हारे मानसिक रोग की चिकित्सा उसने की है ?"

"पर बाबा, मैं रोगी नहीं हूं।"

"तो विवाह अस्वीकार क्यों कर रहे हो ?"

"बाबा ! वह भूमि मुझे पसन्द नहीं है। इस कारण उसमें मैंने अपना बीज विनष्ट करना उचित नहीं समझा।"

"तो उससे अच्छी भूमि और कहां पाओगे ?"

"भूमि तो थी, परन्तु वह किसी दूसरे कृषक के अधिकार में थी। मुझे इस भिषगाचार्य ने उस भूमि पर बीजारोपण की सुविधा प्राप्त कराई है।"

"कैसे कराई है ?" नीलकण्ठ ने उत्सुकता से पूछा।

"अपनी विद्या से। उस विद्या से भूमि अपने स्वामी कृषक को छोड़ मुझसे बीज प्राप्त करने आने लगी है।"

"ओह !" नीलकण्ठ पुत्र की बात से समझ चिन्ता व्यक्त करता हुआ पूछने लगा। उसकी चिन्ता का विषय था कि किसकी भूमि पर इस स्वार्थी जीव ने बीज डाला है। उसने पुत्र की आंखों में देखते हुए पूछ लिया, "और वह भूमि किस कृषक की थी ?"

इस प्रश्न का उत्तर देने से पुत्र को झिझकते देख पिता ने कहा, "देखो बेटा ! हम ब्राह्मण हैं। हमारा यह काम नहीं कि किसी दूसरे की भूमि पर बलात् अधिकार प्राप्त करें। क्षत्रियों ने ऐसे निम्न कर्म करना स्वीकार कर लिया है, परन्तु ब्राह्मण-सन्तान को यह नहीं करना चाहिए।"

"पिताजी ! मैंने बलात् कोई कार्य नहीं किया। सब कुछ दूसरे पक्ष की अनुमति से ही हो रहा है।"

"दूसरे से क्या अभिप्राय है ? भूमि अथवा भूमि के मालिक कृषक को ?"

प्रभाव डालती हैं। मन और बुद्धि बहुत ही सूक्ष्म (अणुवत्) यन्त्र हैं और इनपर प्रभाव उत्पन्न करने के लिए अतिसूक्ष्म औषधियां ही कार्य कर जाती हैं। महाराज ! विभूतिचरण और उससे पहले नीलकण्ठ पर दया अथवा असावधानी का प्रभाव यह हुआ कि वे संसार में उपद्रव करने के लिए जीवित रह गए। नीलकण्ठ अपने को इस योग्य समझता था कि उसकी विद्या ऐसी है कि वह सब संसार की आंखों में धूल झोंककर सबको मूर्ख बना सकता है। दोनों अपने पूर्वजन्म के कर्मों और इस जन्म की दूषित शिक्षा से प्रभावित उथल-पुथल मचाने का यत्न कर रहे थे। उनके अपराध का दण्ड मृत्यु था और यह उनको दिया नहीं गया।

६

विभूतिचरण राज्य के किसी अप्रख्यात गांव में जाकर छुप गया। अपनी विद्या से वह छुटपुट चमत्कार करता हुआ जीवन-निर्वाह कर रहा था। संयोग से उसी गांव में नीलकण्ठ अपनी वृद्धावस्था व्यतीत कर रहा था। उस समय नीलकण्ठ के परिवार के लोग उसके पास आए हुए थे।

नीलकण्ठ का एक लड़का था रजनीश। वह इसी गांव की एक लड़की से विवाह कर अपना जीवन शान्ति से व्यतीत कर रहा था। उसका छोटा भाई सतीश अभी अविवाहित था। उसके लिए गांव में से ही कई सम्बन्धों के प्रस्ताव आ चुके थे, परन्तु वह मानता नहीं था। नीलकण्ठ ने उसके विवाह की चिंता इस विचार से छोड़ रखी थी कि कदाचित् वह अपने को विवाह के अयोग्य पाता है। विभूतिचरण ने गांव में अपना तान्त्रिक-कार्य आरम्भ कर रखा था। श्रीनगर से पर्याप्त धन वह अपने साथ लाया था और उस गांव में अपना निर्वाह सुगमता से चला रहा था। गांव में उसे अपने कार्य से कुछ अधिक प्राप्त नहीं होता था। इसपर भी उसका तान्त्रिक-कार्य विख्यात हो रहा था। वह पड़ोस के गांवों में भी योग्य तान्त्रिक के नाम से विख्यात हो रहा था।

एक दिन नीलकण्ठ के छोटे लड़के सतीश ने अपने पिता को बताया, "बाबा ! यहां एक अति योग्य भिषगाचार्य आया है और वह मानसिक

रोगों का चिकित्सक विख्यात हो रहा है।"

"कहां से आया है ?"

"कहता है कि कुसुमाकर देश से।"

"अर्थात् जहां केसर उत्पन्न होता है ?"

"हां, बाबा !"

"और तुम्हारे मानसिक रोग की चिकित्सा उसने की है ?"

"पर बाबा, मैं रोगी नहीं हूं।"

"तो विवाह अस्वीकार क्यों कर रहे हो ?"

"बाबा ! वह भूमि मुझे पसन्द नहीं है। इस कारण उसमें मैंने अपना बीज विनष्ट करना उचित नहीं समझा।"

"तो उससे अच्छी भूमि और कहां पाओगे ?"

"भूमि तो थी, परन्तु वह किसी दूसरे कृषक के अधिकार में थी। मुझे इस भिषगाचार्य ने उस भूमि पर बीजारोपण की सुविधा प्राप्त कराई है।"

"कैसे कराई है ?" नीलकण्ठ ने उत्सुकता से पूछा।

"अपनी विद्या से। उस विद्या से भूमि अपने स्वामी कृषक को छोड़ मुझसे बीज प्राप्त करने आने लगी है।"

"ओह !" नीलकण्ठ पुत्र की बात की समझ चिन्ता व्यक्त करता हुआ पूछने लगा। उसकी चिन्ता का विषय था कि किसकी भूमि पर इस स्वार्थी जीव ने बीज डाला है। उसने पुत्र की आंखों में देखते हुए पूछ लिया, "और वह भूमि किस कृषक की थी ?"

इस प्रश्न का उत्तर देने से पुत्र को झिझकते देख पिता ने कहा, "देखो बेटा ! हम ब्राह्मण हैं। हमारा यह काम नहीं कि किसी दूसरे की भूमि पर बलात् अधिकार प्राप्त करें। क्षत्रियों ने ऐसे निम्न कर्म करना स्वीकार कर लिया है, परन्तु ब्राह्मण-सन्तान को यह नहीं करना चाहिए।"

"पिताजी ! मैंने बलात् कोई कार्य नहीं किया। सब कुछ दूसरे पक्ष की अनुमति से ही हो रहा है।"

"दूसरे से क्या अभिप्राय है ? भूमि अथवा भूमि के मालिक कृषक की ?"

"पिताजी ! कृषक को तो ज्ञात ही नहीं कि उसकी भूमि पर किसी दूसरे ने भी हल चलाया है।"

"तब तो यह अनुचित कार्य के साथ-साथ चोरी भी है। द्विगुणा पाप हो रहा है।"

"परन्तु भूमि की स्वीकृति तो है।"

"बेटा ! भूमि तो निर्जीव होती है। वह भला-बुरा विचार करने के अयोग्य होती है। यह कर्म तुम ठीक नहीं कर रहे।"

सतीश मुख देखता रह गया और चुपचाप उठ अपने शयनागार में जाकर विचार करने लगा कि उसने क्या बुरा किया है। अपने विचार से वह कुछ भी बुरा कर्म नहीं कर रहा था। यह सिद्धान्त वह पढ़ा था कि भोग और भोक्ता स्वेच्छा से जो भी कार्य करते हैं, वह ठीक करते हैं। उसे अपने व्यवहार में किसी प्रकार का दोष प्रतीत नहीं हुआ।

नीलकण्ठ राज्य-कार्य में अपनी मनमानी चलाने का अपना अधिकार मानता था। वह समझता था कि राजा लोग प्रायः मूर्ख होते हैं और ब्राह्मण-वर्ग का यह अधिकार है कि वह अनुचित कार्य करनेवाले राजाओं को सन्मार्ग दिखाए। वह अपने मन में यह विचार करता था कि प्रतापादित्य ने एक वैश्य सेठ की पत्नी को राज्य का प्रलोभन देकर अपनी पत्नी बना लिया है। इस कारण उसने व्यवस्था भंग की है और वह मारा जाने के योग्य है।

सेठ नोण की पत्नी नरेन्द्रप्रभा को अनियमित पत्नी बनाने के कारण वह मारा जाने योग्य समझ उसके विरुद्ध षड्यन्त्र कर दण्ड देने का उसने प्रयास किया था।

जब वह यह षड्यन्त्र कर रहा था, तब पद्मावती ने पूछा था, "महामात्यजी ! महाराज को हटाकर राजा किसको बनाएंगे ?"

"देखो देवी ! राजा तो कोई क्षत्रिय ही हो सकता है, परन्तु उसे किसी विद्वान ब्राह्मण के अधीन रहकर कार्य करना चाहिए। प्रतापादित्य को बन्दी बनाकर अथवा उसको मारकर तुम्हारे पुत्र को राज्य का अधिकारी बनाऊंगा और सब प्रबन्ध मैं करूंगा।"

जब तक महाराज को बन्दी बनाने की योजना रही, तब तक तो पद्मा-

वती षड्यन्त्र में सम्मिलित रही, परन्तु जब उसे पता चला कि उसके पति की हत्या का प्रस्ताव है तो वह अपने पति प्रतापादित्य को सचेत करने लगी थी। पीछे दूसरी बार जब षड्यन्त्र किया गया तो पद्मावती को विश्वास में नहीं लिया गया। पद्मावती को सन्देह हुआ तो उसने ध्यान-पूर्वक जौहरी को देखा और पहचान गई। उसने अपने पति को सचेत करने के लिए उसका नाम ले दिया। इसपर प्रतापादित्य जो निःशस्त्र वहां था, उठकर खड्ग पकड़ने चला ही था कि नीलकण्ठ ने उसके पेट में छुरा घोंपकर उसकी हत्या कर दी।

नीलकण्ठ भागा, परन्तु काम्भोज और कश्मीर की सीमा पार करता हुआ पकड़ा गया। वह पकड़कर आजन्म कैद का दण्ड भोगता हुआ फिर भाग गया। इस बार उसने सीमा पार करना उचित नहीं समझा और दूर पूर्व में एक छोटे-से गांव में नाम बदलकर रहने लगा। वहीं उसने अपनी पत्नी और तीन बच्चों को बुलवा लिया।

नीलकण्ठ को इस गांव में रहते हुए पन्द्रह वर्ष हो चुके थे। उसकी पत्नी का देहान्त हो गया था और उसने अपनी लड़की सीमावती का विवाह वहीं गांव में एक ब्राह्मण-कुमार से कर दिया था। बड़े लड़के रजनीश का विवाह भी वहां की एक ब्राह्मण-कन्या से हुआ था। दूसरे लड़के का विवाह कर वह सन्यास लेना चाहता था, परन्तु छोटा लड़का विवाह के लिए मानता ही नहीं था।

आज एकाएक उसने अपने पिता के सम्मुख स्वीकार किया कि वह किसी अन्य की पत्नी से अवैध सम्बन्ध बना चुका है और इस सम्बन्ध बनाने में गांव के किसी भिषगाचार्य ने उसकी सहायता की है।

जब सतीश ने बताया कि उसने किसीकी पत्नी पर डाका डाला है तो उसका पिता चिन्ता करने लगा। जब सतीश उठकर अपने आगार में चला गया तो वह गांव में इस नये आए भिषगाचार्य से मिलने चल पड़ा। वह गांव के एक दुकानदार से पूछने लगा, 'क्यों बंसीलाल ! यहां कोई नया वैद्यराज आया है ?"

बंसीलाल ने मुस्कराते हुए कहा, "वह युवकों का वैद्य है। आपको उससे क्या काम है ?"

"लालाजी ! मैं दो युवकों का पिता हूं। इस कारण मुझे उसकी आवश्यकता पड़ गई है।"

"पण्डितजी ! वह दो रजत पूछने-मात्र का दाम लेता है।"

"यह दे दूंगा।"

दुकानदार वंसीलाल ने वैद्य का मकान वता दिया। साथ ही वताया, "वैद्य का नाम हरिदत्त है। वह अपनी पत्नी और एक लड़की के साथ गांव में रहता है। अव उसकी ख्याति युवकों में होने लगी है।"

जव नीलकण्ठ ने लाला वंसीलाल से यह सुना कि वह युवकों का वैद्य है, तो वह समझ गया कि लाला उसीका पता वता रहा है, जिसे वह मिलने आया है।

लाला द्वारा वताए मकान पर नीलकण्ठ गया तो उसने देखा कि मकान की एक कोठरी में एक दाढ़ी-मूंछ रखे अधेड़ आयु का व्यक्ति वैठा है। उसके समीप एक युवक को वैठे देख द्वार पर से ही पूछने लगा, "भिपगाचार्य आप हैं क्या ?"

"वताइए, क्या काम है ?" वैद्य ने एक वृद्ध व्यक्ति को द्वार पर खड़े देख पूछ लिया, "श्रीमानजी ! वैद्य तो मैं ही हूं, परन्तु मैं विना भेंट वात नहीं करता।"

"हां, मुझे वताया गया है कि आप दो रजत भेंट लेते हैं। मैं वह देने के लिए लाया हूं।"

इतना सुन वह युवक, जो वैद्यजी के सामने वैठा था, उठा और वोला, "मैं आपसे मिलने फिर आऊंगा।" और इतना कह वह चल दिया।

वैद्य मुस्कराया और वोला, "ठीक है। वर्तमान भेंट में ही तुम पुनः मिलने आ सकते हो।"

युवक गया तो नीलकण्ठ ने पूछा, "आप चरक अनुगामी हैं अथवा सुश्रुतपंथी ?"

वैद्य ने मुस्कराते हुए कहा, "मैं अग्निवेश की संहिता पढ़ा हूं।"

"वह चरक का भाष्यकार है ?"

"हां, परन्तु उसकी अपनी विशेपता भी है। आप क्या पूछना चाहते हैं ? और मेरी भेंट ?"

इसपर नीलकण्ठ ने अपने उत्तरीय के नीचे सलूके से दो रजत निकालकर वैद्यराज के सम्मुख रखते हुए कहा, "मुझे बताया गया है कि आप वशीकरण-विद्या के विशेषज्ञ हैं। क्या यह ठीक है ?"

"यह बिलकुल ठीक है।" वैद्य ने आगन्तुक की आंखों में देखते हुए कहा।

"आप यदि प्रमाण दें कि आपको इस विद्या का अभ्यास है, तो मैं अपना अगला प्रश्न कर सकूंगा।"

"परन्तु महाराज ! प्रमाण देने से तो विश्वासघात हो जाएगा।"

"विश्वासघात तो तब होगा, जब मैं किसीको बताऊंगा। मैं सौगन्धपूर्वक कहता हूं कि मैं किसीसे नहीं कहूंगा। परन्तु मेरी बात तो तब ही बताई जा सकती है, जब मुझे आपकी योग्यता पर विश्वास हो जाए।"

पण्डित हरिदत्त ने कुछ देर तक नीलकण्ठ के मुख पर देखते हुए विचार किया और उसे मुस्कराते हुए देख कहने लगा, "आप विश्वास योग्य व्यक्ति प्रतीत होते हैं। इसपर भी आप भगवती दुर्गा की सौगन्ध खाकर कहें कि किसीको रहस्य की बात नहीं बताएंगे, तब मैं एक-आध प्रमाण आपको दे सकता हूं।"

"मैं आपका कृतज्ञ हूंगा और फिर भेंट में कुछ और भी देने का वचन देता हूं।"

"यहां इसी गांव में एक पण्डित रघुनाथ द्विवेदी रहते हैं। उनके पुत्र को मैंने एक औषधि दी है। वह उसकी प्रेमिका को खिलाने से उसके अनुकूल हो गई है। आप उस लड़के से पूछ सकते हैं।"

"लड़के का क्या नाम है ?"

"सतीश द्विवेदी।"

"और उसने यह बताया है कि आपकी औषधि का प्रभाव हुआ है ?"

"बात यह है कि मेरे पास तीन प्रकार के व्यक्ति चिकित्सा कराने आते हैं। एक तो जो सात्त्विकी बुद्धि रखते हैं। उनको तो औषधि का सेवन नियम से कराना होता है। उनकी बुद्धि पर अस्थायी प्रभाव ही होता है। जो राजसी बुद्धिवालों के लिए औषधि मांगते हैं, उनकी बुद्धि तो एक-दो दिन में ही सदा के लिए प्रभावित हो जाती है। तीसरे वे लोग

आते हैं, जिनको किसी तामसी बुद्धिवाले पर वशीकरण करना होता है और जब वह वश में नहीं आता तब औषधि उसको खिलानी होती है, जो किसी-को वश में करनेवाला होता है। इसी अवस्था में वशीकरण का प्रयोग करनेवाले में बल और तेज की वृद्धि करने की आवश्यकता होती है।"

"आपने इस रघुनाथ के लड़के को औषधि खिलाई है अथवा उसकी प्रेमिका को ?"

"द्विवेदीजी का लड़का तो राजसी प्रकृति का था और वह जिसको अपने वश में करना चाहता था, वह सात्त्विकी बुद्धिवाली स्त्री थी। इस कारण उसको औषधि नित्य देने की आवश्यकता है। जो बुद्धि उसको जन्म से मिली है, वह एकाएक तो परिवर्तित नहीं की जा सकती। उसपर पर्दा डाला जा सकता है और वह तामसी बुद्धि की अस्थायी रूप में होती है। इस कारण द्विवेदीजी का लड़का नित्य औषधि लेने आता है।"

"वैद्यजी ! अत्यन्त धन्यवाद है। मैं अब उस द्विवेदी के लड़के से मिल पता करूंगा और फिर अपनी समस्या आपके सम्मुख रखूंगा। तब अपनी बात कहने की भेंट आपको पृथक् दूंगा।"

पण्डित हरिदत्त अतिप्रसन्न था। नीलकण्ठ जो गांव में रघुनाथ द्विवेदी के नाम से विख्यात था, अब यह तो जान गया था कि सतीश इस वैद्य से कोई औषधि लेकर जाता है और नित्य किसीको खिलाता है और औषधि से मतिभ्रष्ट हुई वह स्त्री सतीश के वश में आती है।

यह था तो पाप और अपने पुत्र को इसमें धंसा देख वह उसे इससे मुक्त कराने का उपाय विचार करने लगा।

अब वह यह जानना चाहता था कि किस समय उसका लड़का हरिदत्त के पास जाता है और जो कुछ वहां से लाता है, वह किसको खिलाता है।

इसके लिए उसे अपने बड़े लड़के को अपने छोटे लड़के के पीछे लगाना ठीक समझ आया। उसने रजनीश को सतीश की और फिर हरिदत्त की बात बताई और कह दिया कि तनिक उसकी देखरेख करो और फिर बताओ कि वह किसको पतित कर रहा है।

पण्डित रघुनाथ ने गांव में अपने खाने-भर के लिए अन्न-अनाज का खेत तथा फलाहार के लिए फलोद्यान लगाया हुआ था। बड़ा लड़का खेत

पर काम करता था और छोटा उद्यान में रुचि लेता था।

जब पिता ने रजनीश को सारी बात बताई तो वह भी छोटे भाई के कुत्सित विचार को ठीक करने के लिए पिता के कहने पर छोटे भाई की गतिविधि को देखने लगा।

रजनीश ने जब आंखें खोल छोटे भाई को देखना आरम्भ किया तो तुरन्त ही सब बात जान गया और फिर उसने एक दिन अपने पिता को सब बता दिया।

रजनीश ने बताया, "पिताजी ! सतीश तो अपनी भाभी को ही पत्नी बनाए हुए है।"

"सत्य !" पिता अवाक् मुख देखता रह गया। फिर पूछने लगा, "कैसे जाना है यह ?"

"पिताजी ! मैं पहले इस बात की टोह लेने लगा कि वह कब उस भिषगाचार्य के पास जाता है और वहां से औषधि लाकर यह क्या करता है। यह तो पहले दिन ही मैं जान गया कि सतीश घर से उद्यान में जाता है। वहां वह दो घण्टे-भर काम कर दूसरे प्रहर वैद्यजी से मिलने जाता है। वहां इसे कुछ अधिक देर नहीं लगती। वहां से लौट वह उद्यान में से दो बड़े-बड़े सन्तरे तोड़ उनका रस निकाला करता है और उस रस में वैद्यजी की पुड़िया में से औषधि मिला अपनी भाभी को पिलाने ले जाता है। वह उसी रस में से कुछ स्वयं भी लेता है।

"फिर मैंने महेश्वरी की भी जांच-पड़ताल की है। वह मध्याह्नोत्तर सतीश के आगार में जाती है और नित्य मुख काला कर आती है। रात को तो वह स्वस्थ मस्तिष्क की अनुभव होती है। यह ठीक है कि अब वह मुझमें रुचि नहीं रखती। इसपर भी जब कभी मैं उसकी संगत की इच्छा करता हूं तो वह मेरा विरोध भी नहीं करती।"

रघुनाथ द्विवेदी मुख देखता रह गया। वह बोला, "मैं इसका प्रबन्ध कर दूंगा।"

"क्या करेंगे पिताजी ?"

"मैं उसे खेत पर काम करने के लिए भेजना आरम्भ कर दूंगा और तुम्हें उद्यान का काम दे दूंगा। इससे भिषगाचार्य के कथनानुसार वह उस

मादक द्रव्य के प्रभाव में न रहकर तुम्हारी पत्नी बनी रहेगी।"

"परन्तु मैं तो उसकी हत्या करने का विचार किए हुए हूं।"

"किसलिए ? इसमें उसका दोष तो प्रतीत होता नहीं। जैसे मद्य के प्रभाव में व्यक्ति कुछ भूल जाता है, वैसा ही तो महेश्वरी कर रही प्रतीत होती है। दोष तो मद्य का होता है। वैद्य की औषधि तुम्हारी पत्नी के मस्तिष्क में तामसी प्रभाव उत्पन्न कर उससे यह कुकृत्य कराती है।"

"तो करिए। यदि वह उस औषधि के प्रभाव से छूटकर सन्मार्ग पर आ गई तो मैं उसे क्षमा कर दूंगा।"

"हां, वह क्षमा की ही पात्रा है।"

७

परन्तु रघुनाथ द्विवेदी के मस्तिष्क में वैद्य की कला को देख एक अन्य बात उत्पन्न हो उठी। वह महामात्य के मस्तिष्क की उपज थी। पिता ने पुत्रों का कार्य बदला तो सतीश ने विरोध किया। पिता ने समझाया, "देखो बेटा ! तुम दोनों भाई हेल-मेल से रहोगे तो सुख पाओगे। रजनीश खेत का कठोर कार्य करता हुआ ऊब गया प्रतीत होता है। अब कुछ काल के लिए अदला-बदली कर लो। पीछे फिर कार्य बदल दूंगा। इस प्रकार तुममें से किसीको भी एक-दूसरे से ईर्ष्या नहीं होगी। कुछ काल के लिए अभी कार्य बदल लो और फिर जब तुम खेत के कार्य से ऊब जाओगे तो तुम बताना। तब मैं रजनीश से कहकर पुनः काम बदल दूंगा।"

निराश पुत्र भविष्य में पुनः अवसर मिलने की आशा में पिता की बात मान गया। इतना प्रबन्ध कर रघुनाथ पुनः पण्डित हरिदत्त के पास जा पहुंचा। इस बार बिना पण्डित के मांगे उसने दो रजत पण्डितजी के सम्मुख भेंट के रखे और हाथ जोड़ बोला, "महाराज ! मैं ही वह रघुनाथ द्विवेदी हूं, जिसके पुत्र को आप वशीकरण औषधि देते थे।"

"तभी कई दिन से वह औषधि लेने नहीं आया। परन्तु पण्डितजी ! आपने मुझे वचन दिया था कि आप मेरा रहस्य किसीपर भी प्रकट नहीं करेंगे।"

मादक द्रव्य के प्रभाव में न रहकर तुम्क़ वैष्णव है। वह किसीकी भी हत्या
"परन्तु मैं तो उसकी हत्या करोलों को क्षमा कर आजन्म कैद में दण्ड
"किसलिए ? इसमें उसका दईयाभाव से मृत्युदंण्ड से मैं वच गया और
प्रभाव में व्यक्ति कुछ भूल जाता री पत्नी ने वन्दीगृह के संरक्षक को धन से
होती है। दोप तो मद्य का हो अवसर दिला दिया।
मस्तिष्क में तामसी प्रभाव उकी ओर भागने के स्थान पर इस राजधानी से
"तो करिए। यदि वह ा हूं। किसी बुद्धिमान राज्य-कर्मचारी को यह
आ गई तो मैं उसे क्षमा क राज्य के महामात्य-पद पर रहनेवाला कभी इस
"हां, वह क्षमा की र जीवन को भी सहन कर सकता है। इस मिथ्या
। पन्द्रह वर्ष से यहां शान्ति का जीवन व्यतीत कर

एक लालसा थी। वह थी इस देश को वर्तमान राज्य-
परन्तु रघुन दिलाना। यह परिवार एक विप-वीज है। इससे देश
वात उत्पन्न हहीं होगा। इसका आरम्भ हुआ था एक नागजातीय क्षत्रिय
पुत्रों का कार्यह परिवार आया है, देश का पतन होता चला जा रहा है।
"देखो वेटा ार्य में सफल हो सकता था, परन्तु मेरा एक साथी राजा की
खेत का ाय पत्नी के मोहजाल में फंस उलटी योजना वनाने लगा था।
के लिए इसके साथ हमारे मन्त्रिमण्डल में एक ब्राह्मण देवता उस परिवार
तुममें भा के लिए अपनी वुद्धि का प्रयोग करने लगा है। वह परिवार की
ंखलता तो दूर नहीं कर सका; हां, उनकी रक्षा करता चला जाता
अपने विचार से यह शुभ कार्य करने का विचार रखता हूं। यदि
।प सहायता करें, तो मैं आपका वहुत कल्याण करूंगा।"

पण्डित हरिदत्त को भी श्रीनगर स्मरण आने लगा था और वह पुनः अपने भाग्य की परीक्षा लेने का विचार वना वैठा। वह रघुनाथ द्विवेदी के साथ चलने के लिए तैयार हो गया।

हरिदत्त ने कहा, "मैं अपनी औपधि से तामसी प्रभाव उत्पन्न कर दूंगा, और यदि वह व्यक्ति राजसी प्रवृत्ति का हुआ तो एक मात्रा से ही स्थायी प्रभाव उत्पन्न हो जाएगा और फिर कोई उसे प्रेरणा देनेवाला हुआ तो रक्त की नदियां वह जाएंगी। मैं भी राजधानी में कुछ काम अधूरा

विभूतिचरण ने इसमें उसकी सहायता कर दी। तारामीड़ से विभूतिचरण का परिचय था। वह उसके मित्रों और सहयोगियों को भी जानता था। उनमें से एक राजेश्वर पाण्डेय से नीलकण्ठ का सम्पर्क बना तो उनकी योजना द्रुतगति से चलने लगी।

राजेश्वर के विषय में विभूतिचरण जानता था कि वह धन का लोभी है। अतः उसे नीलकण्ठ अपने अनुकूल सुगमता से बना सका था। राजेश्वर से दो काम नीलकण्ठ ने लिए। एक तो यह कि तारा को एक औषधि केवल एक दिन खिलाए। खिलाने के उपरान्त उसे इनके कहने के अनुसार राज्य-पद प्राप्त करने की प्रेरणा देने लगे।

राजेश्वर के लिए यह कठिन बात नहीं थी। औषधि तो मद्य में सेवन करा दी गई और राज्य पाने की प्रेरणा तो वह पहले ही दे रहा था।

पण्डित विभूतिचरण का यह कहना था कि तारामीड़ राजसी बुद्धि का जीव है। यह राजसी बुद्धि उसे अपनी माता से मिली है। उसका मां के पेट में ऐसे समय में बीजारोपण हुआ था, जब मां के मस्तिष्क में राजसी विचार ओतप्रोत हो रहे थे।

राजेश्वर पाण्डेय को इस काम के लिए एक सहस्र रजत अग्रिम दिया गया तो उसने कार्य कर दिया। इतना ही धन कार्य के पीछे देने का वचन दिया गया।

इसपर राजेश्वर का प्रश्न था, "किस कार्य की आशा आप करते हैं? क्या लक्षण देखकर आप शेष धन देंगे?"

नीलकण्ठ ने बताया, "हम चाहते हैं कि तारामीड़ कश्मीर की राज्य-गद्दी पर बैठ जाए। इसके लिए उसे नर-रक्त की नदी पार करवानी पड़ेगी। यह वह हमारी औषधि और तुम्हारी प्रेरणा से कर सकेगा।"

औषधि का प्रभाव धीरे-धीरे प्रकट होने लगा।

८

एक दिन तारा का राज्य-कार्यालय में महामात्य विष्णुदत्त से झगड़ा हो गया।

"ताराजी !" विष्णुदत्त ने कहा, "बहुत दिन से आपके विभाग का काम नहीं हो रहा। मैं देखता हू कि राज्य के बहुत-से आवश्यक कागज-पत्र आपके पास बिना पढ़े और बिना किसी प्रकार की आज्ञा के पड़े हुए हैं।"

"महामात्यजी ! हो जाएगे। आजकल कुछ परेशानी अधिक हो रही है। इस कारण काम मे मन नहीं लगता।"

"क्यो, क्या बात है ?"

"भैया फिर नाराज हो रहे हैं। मैं तो पुरानी बात भूल गया था, परन्तु वह उसे भूले नहीं। वह अभी भी मेरे मार्ग मे बाधक बन रहे हैं।"

"और आपका क्या मार्ग है ?"

"आप तो जानते ही है कि मेरा मोह मधु नाम की लडकी से है और दादा उसे राज्यप्रासाद के समीप फटकने तक नहीं देते।"

"तो फिर तुम्हारी बुद्धि पर तामस का तिमिर छा गया है ?"

"श्रीमान् ! मेरी पत्नी तो पिछले चार वर्ष मे तीन बच्चे उत्पन्न कर चुकी है। इस कारण मैं उसका स्थानापन्न चाहता हू।"

"तो तुम किसी अच्छे परिवार की किसी अन्य लडकी से दूसरा विवाह कर लो।"

"परन्तु मधु मे क्या दोष है ?"

"वह कहार की बेटी राज्यप्रासाद मे रानी बनने के योग्य नहीं है।"

"परन्तु एक समय एक वैश्य की लडकी भी तो रानी बन चुकी है।"

विष्णुदत्त यह सुन चुप हो गया। वह तारामीड का मुख देखता रह गया। इसपर तारामीड ने उठते हुए पूछा, "तो अब मैं जाऊ ?"

"हा, परन्तु मैं राज्य-कार्य मे ढील नहीं देख सकता। इस कारण तुम सब राजकीय कागज-पत्र मुझे लौटा दो और मैं तुम्हारे स्थान पर किसी अन्य को नियुक्त कर दूगा। तुम मधु के लिए मा और महाराज से पूछ लो। मैं राज्यप्रासाद के झगडे मे राज्य-कार्य बिगडने नहीं दे सकता।"

"तो जो कार्य आप करते हैं अथवा जो मुझसे कराते हैं, वह राजा का कार्य नहीं है क्या ?"

"है तो राजा का ही, परन्तु राज्यप्रासाद का कार्य राजा अथवा राज्य का कार्य नहीं। इस कारण उसमे मैं राज्य-कार्य बिगडने नहीं दूगा।"

"और यदि मैं वे पत्र इत्यादि न लौटाऊं, तो क्या करोगे ?"

"उन पत्रों के बिना उनका कार्य करने लगूंगा। किसी भी अवस्था में राज्य-कार्य नहीं रुकना चाहिए।"

"तो कर लीजिए। मैं वे पत्र वापस नहीं करूंगा।"

यह झगड़ा हुआ तो राज्य-कार्यालय में तारामीड़ के विद्रोही हो जाने का समाचार फैल गया। तारामीड़ जब महामात्य के आगार से निकला तो उसकी आंखें लाल हो रही थीं। कार्यालय के लोग इसे शुभ का लक्षण नहीं समझते थे।

इस झगड़े की सूचना नीलकण्ठ इत्यादि को भी मिली। नीलकण्ठ और विभूतिचरण दोनों इस सूचना से प्रसन्न थे। उसी सायंकाल राजेश्वर उनसे मिलने आया। यद्यपि महामात्य से झगड़े की बात विभूतिचरण अपने राज्य-कार्यालय में परिचितों से प्राप्त कर चुका था, इसपर भी उन्होंने पूर्ण बात व्याख्यासहित सुनी।

राजेश्वर पाण्डेय तो नियत धनराशि में से कुछ और लेने आया था, परन्तु नीलकण्ठ ने कह दिया, "शेष धनराशि तो तारामीड़ के कोई शौर्य का कार्य करने पर ही मिलेगी।"

नीलकण्ठ का संकेत था कि अपने भाई को मारकर उसके स्वयं राजा बनने पर, परन्तु वह इतने स्पष्ट शब्दों में कह नहीं सका। राजेश्वर कुछ परेशानी अनुभव कर रहा था। इसपर विभूतिचरण ने पूछ लिया, "पाण्डेयजी ! क्या बात है ?"

राजेश्वर ने झिझकते हुए कहा, "आज कुछ धन की अत्यन्त आवश्यकता थी।"

"और उस दिन वाली रकम समाप्त हो गई है क्या ?"

"वह तुम्हारी भाभी के पास रखी है और वह काम पूछे बिना देती नहीं है।"

"तो काम बता दो।"

"सब काम अपनी पत्नी को बताए नहीं जा सकते। उसे पता लग गया तो जूतों से पीटने लगेगी।"

विभूतिचरण और नीलकण्ठ दोनों समीप बैठे थे। वे राजेश्वर की

बात सुन हंसने लगे।

इसपर राजेश्वरी ने कह दिया, "पण्डित ! यह हंसने की बात नहीं। तुम्हारी भी ऐसी पत्नी होती तो तुम हसते नही।"

"पर तुम पत्नी से चोरी किसलिए धन चाहते हो ?"

"यह कुछ ऐसा काम है कि पत्नी ईर्ष्या करने लगेगी।"

"तो यह बात है !"

इसपर नीलकण्ठ बोल उठा, "देखिए पाण्डेयजी ! वह रकम तो काम सम्पन्न होने पर ही मिलेगी। हां, यदि कुछ और काम करो तो उसके प्रतिकार में कुछ मिल सकता है।"

"क्या करने को कहते है ?"

"मेरा लडका है। इसे राजकीय कार्यालय में कुछ काम दिलवा दो।"

"यह हो तो सकता है, परन्तु मुझे कुछ रजत की तुरन्त आवश्यकता है।"

"कितने रजत चाहिए ?"

"यदि पचास मिल जाए तो काम चल जाएगा।"

"और सेवा-कार्य दिलवाने का क्या लोगे ?"

"क्या सेवा-कार्य वह कर सकेगा ?"

"लड़का पढ़ा-लिखा है, हिसाब-किताब रखना जानता है। वैसे देव-भाषा बोल और लिख सकता है।"

"तो ऐसा करिए।" राजेश्वर ने कहा, "मैं इसे एक सौ रजत मासिक का काम दिलवा दूंगा। उसके प्रतिकार में पचास रजत अभी और पचास रजत काम दिलवाने पर दे दीजिएगा।"

"ठीक है।" नीलकण्ठ ने स्वीकार किया। उसने अपने शयनागार में जाकर वहां से पचास रजत लाकर राजेश्वर पाण्डेय को दे दिए। जब राजेश्वर चला गया तो विभूतिचरण ने कहा, "तो आप सतीश को सेवा-कार्य दिलवाएंगे ?"

"हां।"

"परन्तु मैं तो उसे अपनी विद्या सिखा रहा था।"

"क्या सिखा रहे थे ?"

"पण्डित रघुनाथजी, मैं उसे ज्योतिष-विद्या सिखा रहा था। उसको

हस्त-रेखाएं पढ़ने का काम समझा रहा था।"

"सत्य ?"

"हां।"

"तो सिखाते जाइए। इसपर भी राज्य-कार्यालय में तो उसे मैं भेजना चाहता हूं। वह राज्य-कार्य में भाग लेना चाहता है; परन्तु यह तब होगा, जब तारामीड़ राजा बनेगा।"

विभूतिचरण गम्भीर हो बोला, "मैं आपको यह सम्मति दूंगा कि आप ऐसी इच्छा न करें।"

"क्यों ?"

"इस राज्य में जो बीज मैंने बोए हैं, वे भयंकर परिणाम उत्पन्न करनेवाले हैं। उस उपद्रव में किस-किसका अनिष्ट होगा, कहा नहीं जा सकता।"

"अच्छा, देखेंगे।"

विभूतिचरण घर से बाहर जाने लगा तो नीलकण्ठ भी साथ चल पड़ा। वह नदी-तट पर घूमता हुआ अपनी योजना की दिशा पर विचार करना चाहता था।

जब वह नदी पर अपनी छोटी-सी नौका में पानी के बहाव से ऊपर की ओर जा रहा था तो उसे एक राजसी बजरा नीचे से ऊपर को जाते मिला। नीलकण्ठ की नौका को एक मांझी खे रहा था और राजसी बजरे को बीस मांझी खेते हुए ले जा रहे थे। बजरा भी बहुत बड़ा था। इस कारण बीस खेनेवाले होने पर भी बजरा नीलकण्ठ की नौका के साथ-साथ कुछ देर तक चलता रहा। वह धीरे-धीरे नौका से आगे निकल रहा था। नीलकण्ठ ने देखा कि बजरा राजकीय पताकाओं से सुशोभित है और उसमें एक युवक एक बहुत ही सामान्य रूप-रेखावाली स्त्री के साथ बैठा जा रहा है।

नीलकण्ठ की दृष्टि बजरे में बैठे युवक से मिली तो उसने हाथ जोड़ प्रणाम कर दिया। युवक ने अपने समीप बैठी स्त्री से कुछ कहा और उसने भी कुछ कहा। परिणाम यह हुआ कि बजरे की गति हलकी हो गई। नीलकण्ठ इसका अर्थ नहीं समझ सका। वह विस्मय में इस दम्पती की

ओर देखता रहा। धीरे-धीरे बजरा नौका के समीप आने लगा। बजरा सर्वथा निकट आ गया। इस समय बजरे से एक माझी कूदकर नौका पर आ गया और नीलकण्ठ को हाथ जोड़ प्रणाम कर बोला, "आपसे महाराज मिलना चाहते हैं।"

नीलकण्ठ ने पूछा, "वह हमें जानते हैं क्या ?"

"श्रीमान् ! यह तो मैं जानता नहीं। मुझे आज्ञा हुई है कि आपको बजरे पर आने का निमन्त्रण दे दूं।"

विभूतिचरण तो जानता था कि वह कौन है। उसने पण्डित नीलकण्ठ को बताया, "राजकुमार तारामीड है।"

"तो चलना चाहिए ?"

"इनकार कैसे कर सकते हैं ?"

"यह अच्छा नहीं हो रहा।"

"जो कुछ भी हो। पण्डित, घबराओ नहीं, आओ।"

दोनों उठ, कूदकर नौका में बजरे पर चले गए। नीलकण्ठ ने अपनी नौका खेनेवाले को कह दिया कि नौका बजरे के साथ बांध दो।

इन दोनों को तारामीड के सामने उपस्थित किया गया तो नीलकण्ठ ने पुन नमस्कार की और सामने खड़ा हो गया। तारामीड के पास मधु बैठी थी। वास्तव में उसने विभूतिचरण को पहचान लिया था। अत बात उसने ही आरम्भ की। उसने कहा, "पण्डितजी ! आप कहां लापता हो गए थे ?"

विभूतिचरण ने विस्मय प्रकट करते हुए कहा, "देवीजी, मैं आपको नहीं जानता। वास्तव में मैं यहां का रहनेवाला नहीं हूं। मैं चन्द्रभागा के तट पर राधा गांव का रहनेवाला हूं। इनकी सेवा गांव में करता था और इनके ही साथ यहां आया हुआ हूं। मैं यहां किसी व्यक्ति को जानता नहीं।"

"तो आप विभूतिचरण नहीं हैं ?" मधु ने विस्मय प्रकट करते हुए पूछा।

"नहीं देवीजी, मेरा नाम तो रामदेव वर्मन है। मैं ब्राह्मण नहीं हूं।"

मधु विस्मय से मुख देखती रह गई। फिर क्षमा-याचना करते हुए

बोली, "तो भूल हो गई है। मैं अपने पिताजी के परिचित, आपको एक ज्योतिषी समझी थी। वह पांच वर्ष से दिखाई नहीं दिए।"

"तो अब हम जाएं?" नीलकण्ठ ने पूछ लिया।

"नहीं, बैठो।" तारामीड़ ने कहा। दोनों उनके सामने के स्थान पर बैठ गए। तारामीड़ ने कहा, "आप सूरत-शक्ल और वस्त्रों से कोई धनी-मानी व्यक्ति प्रतीत होते हैं।"

"हां, महाराज!" उत्तर नीलकण्ठ ने ही दिया, "मेरे पिता किसी समय श्रीनगर के व्यापारी थे, परन्तु उनका पत्नी, हमारी माताजी का देहान्त हुआ तो उनको वैराग्य हो गया। वह हम सबको लेकर राधा गांव में चले गए थे। अब उनका देहान्त हो चुका है। हमारी उस गांव में जमींदारी है। वैसे मैं पढ़ा-लिखा विद्वान हूं और राजधानी में किसी काम की खोज में आया हूं।"

"और आपके गांव में शेष परिवार में कौन-कौन है?"

"हम दो भाई थे। मुझसे छोटा भाई याद्र देश में चला गया था। अब वह वहां पर ही है। मेरे दो लड़के हैं, परन्तु पत्नी का देहान्त हो चुका है। एक लड़का अपनी पत्नी के साथ घर पर है और दूसरा लड़का जो अविवाहित है, मेरे साथ यहां आया हुआ है।"

"आप कितने दिन से यहां है?" तारामीड़ ने पूछा।

"हमें यहां आए आज एक सप्ताह हो गया है।"

"तो कुछ व्यापार करने का विचार है?"

"नहीं, श्रीमान्! मैं राज्य में सेवा-कार्य का इच्छुक हूं, परन्तु अभी तक वहां तक पहुंचने का कोई साधन नहीं मिला।"

"मुझे जानते हो?"

"इतना ही जो इस राजकीय वजरे को देख अनुमान लग सकता है।"

वह युवक मुस्कराया। मुस्कराकर बोला, "मैं कश्मीर-नरेश का छोटा भाई तारामीड़ हूं।"

नीलकण्ठ खड़ा होकर हाथ जोड़ प्रणाम कर बोला, "मैं कुछ और समझा था।"

"क्या समझे थे?"

"यही कि आप किसी मन्त्री के सुपुत्र होंगे।"

इसपर तारापीड़ और मधु दोनों हंसने लगे। हंसते हुए तारापीड़ ने कहा, "कल राज्य-कार्यालय में मुझसे मिलना। मैं देखूंगा कि आप क्या कर सकते हैं।"

"मैं अवश्य सेवा में उपस्थित हो जाऊंगा।"

इसपर समीप बैठी मधु ने कहा, "यह भी ठीक ही है। मेरी भूल से कदाचित् आपका काम बन जाए।"

उत्तर नीलकण्ठ ने ही दिया, "मैं आपका जीवन-भर कृतज्ञ रहूंगा।"

नीलकण्ठ अभी तक खड़ा था। उसने पूछा, "महाराज! किस समय आऊं?"

"मैं निश्चय से नहीं कह सकता। आप आ जाइए और मेरी प्रतीक्षा करिएगा।"

नीलकण्ठ और विभूतिचरण दोनों अपनी नौका में आ गए। नौका को बजरे से पृथक् किया तो बजरा आगे निकल गया। अब पण्डित विभूतिचरण ने कहा, "यह लड़की मुझे पहचान गई है। राजकुमार की प्रेमिका है। नाम है मधु। यह कहार की बेटी है और इसका पिता मेघ मेरा परिचित है।"

"तो आपका भेष दोषपूर्ण है। इसमें आप छुपे नहीं रह सके।"

"मैंने इसे चकमा दे दिया है। अब हमें इसी रूप में बनकर रहना होगा।"

"देखिए पण्डितजी! अब या तो राज-दरबार में जाना होगा और वहां इस बताए रूप में ही रहना होगा अथवा यहां से लापता हो जाना होगा।"

"यहां रहना भय से रिक्त नहीं।" विभूतिचरण का कहना था, "यदि पकड़े गए तो आजन्म बन्दी बन यहां ही रहना होगा।"

"मैं तो भय मोल लेने को तैयार हूं, परन्तु तारापीड़ की सेवा में नहीं रहना चाहता। मैं तो चन्द्रपीड़ की सेवा में जाना चाहता हूं और उसका पक्ष लेना चाहता हूं।"

"अर्थात् दो नौकाओं में सवार होना चाहते हो?"

"हां। साथ ही सतर्क रहना चाहता हूं, जिससे मैं डूबनेवाली नौका से कूदकर दूसरी न डूबनेवाली नौका में आ सकूं।"

विभूतिचरण विस्मय में मुख देखता रह गया। नीलकण्ठ ने कह दिया, "डरिए नहीं रामदेवजी ! मैं इस प्रकार के जीवन का अभ्यास रखता हूं।"

विभूतिचरण का भय दूर नहीं हुआ। वह विचार कर रहा था कि इस पिता-पुत्र से पृथक् कैसे रहा जा सकता है। नीलकण्ठ यह विचार कर रहा था कि एक की सेवा में रहते हुए दूसरे का हित कैसे हो सकेगा।

शेप भ्रमण मे दोनों साथी अपने-अपने विचारों में लीन मौन रहे।

९

उस दिन के महामात्य और तारामीड़ में झगड़े की सूचना राज्य-प्रासाद में भी पहुंची। महाराज चन्द्रमीड़ राज्यप्रासाद में पहुंचते ही मां के पास पहुंचा। मां ने उसके मुख पर परेशानी देख पूछ लिया, "क्या वात है चन्द्र ? मुख पर चिन्ता की रेखाएं क्यों हैं ?"

"मां !" पुत्र ने कहा, "आज तारा ने महामात्य से झगड़ा किया है और राजकीय कार्य में उनकी आज्ञा का विरोध किया है।"

नरेन्द्रप्रभा अपने छोटे लड़के के साथ वहुत स्नेह रखती थी और दोनों भाइयों में होनेवाले विवाद में वह सदा छोटे का पक्ष लेती रहती थी। अतः स्वभाववश, उसने कह दिया, "परन्तु महामात्य को राज्य-परिवार के घटकों को आज्ञा नहीं देनी चाहिए।"

"इस अवस्था में मुझे तारा को राजकीय कार्यालय से काम छुड़ाकर वाहर का काम देना पड़ेगा।"

"वाहर का क्या काम दोगे ?"

"घोड़े पर सवार हो देशाटन करने का।"

"इससे क्या होगा ?"

"होगा यह कि वह जनता में अधिक ख्याति प्राप्त करेगा और एक दिन अपने वड़े भाई को राजगद्दी से उतार स्वयं राजा वन जाएगा।"

"तो प्रजा के कहने से राजा वनते हैं क्या ?"

"हा, माताजी ! राज्य के तीन स्तम्भ हैं—सेना, धनी-मानी लोग तथा विद्वान लोग।

"आजकल के विद्वान तो मोल लिए जा सकते हैं। शेष रही सेना और धनी-मानी लोगों की बात, ये दोनों जनता की उपज होते हैं। जिधर जनता होती है, उधर ये दोनों जनता के वश हो जाते हैं।

"जब तारामीड मेरा विरोध करेगा तो निर्णायक जनता ही होगी। मा, मैं जानता हू कि बडी मा के पुत्र को राज्य क्यों नही मिला। केवल इस कारण कि तुम्हारी एक धार्मिक प्रवृत्तिवाली स्त्री होने की ख्याति थी। जनता जानती थी कि तुमने एक बार धर्म के लिए जान जोखिम में डाल दी थी और बडी मा बदनाम हो गई थी; क्योंकि नीलकण्ठ ने उसके और उसके माता-पिता के विरुद्ध रहस्योद्घाटन किया था। परिणाम-स्वरूप उसके पुत्र के अधिकारों को पददलित कर मुझे राजगद्दी मिली थी और वही बात अब भी हम दोनों भाइयों में हो सकेगी।"

"तब तो मुझे तुम दोनो भाइयो में सधि करानी चाहिए, और तुम महामात्य से कह दो कि राज्य-परिवार के किसी भी घटक पर उसकी आज्ञा नही चलेगी और जब उसे कोई बात राज्य-परिवार के किसी घटक से मनवानी हो, तो मेरे द्वारा मनवाया करे। राज्य-परिवार की मैं पुरखा हू।"

चन्द्रमीड मा का मुख देखता रह गया। फिर कुछ विचारकर बोला, "महामात्य कहता था कि राज्य-कार्यालय में वह अध्यक्ष है। यदि उसमें उसकी आज्ञा की अवहेलना की गई तो कार्य में दुर्व्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी। किसी भी कार्य में दो अध्यक्ष नही हो सकते। उसकी आज्ञा कार्यालय में चलनी चाहिए। उसके ऊपर मन्त्रिमडल की सम्मति से राजा हो सकता है।"

"तब तो बात सुगम है।" नरेन्द्रप्रभा ने कह दिया, "तुम मन्त्रिमडल में बात उपस्थित कर दो और उसे महामात्य और तारा में निर्णय करने दो। तुम बीच में आओ ही नही।"

"तो तुम तारा को समझाओगी नही ?"

"मैं तुम दोनो में सुलह करवा सकती हू।"

परन्तु आपने एक सेवक की लड़की, राज्यप्रासाद में सेवा-कार्य
ाली के लिए अपनी माताजी को नाराज़ कर दिया है।"

"परन्तु मैंने तुम्हें रानी के पद पर आसीन कर दिया है और मां ने
प्रिय रानी का अपमान कर दिया। मैं इसको कैसे सहन कर सकता
?"

यद्यपि मधु जैसी सामान्य बुद्धिवाली स्त्री को भी यह समझ नहीं
ाया कि मां का अपमान करना ठीक था। इसपर भी वह मौन थी। वह
समझती थी कि उसकी सुख-सुविधा तो तारा पर ही निर्भर करती है।
उसे वह नाराज़ नहीं कर सकी।

मधु ने तो खाने का बहाना-मात्र ही किया था। तारामीड़ ने पेट-भर
खाया और राज्य-कार्यालय को जाने के लिए तैयार होने लगा।

परिवार के अन्य सदस्यों ने भोजन नहीं किया। सब चुपचाप नरेन्द्र-
प्रभा के आगार में जा बैठे।

नरेन्द्रप्रभा ने दासी को बुलाकर कह दिया, "बच्चों को इनके आगारों
में ले जाकर अल्पाहार करा दो।"

कमलावती ने सास को कहा, "मांजी ! यह ठीक नहीं हो रहा।"

"यह तो मैं भी देख रही हूं, परन्तु इसका उपाय तो समन्वय ही है।"

कमला ने कह दिया, "वही तो आपने किया नहीं। जब आपका प्रिय
पुत्र गन्दी नाली में खेलना चाहता है, तो आपको भी उस नाली के उड़ रहे
छींटों से डरना नहीं चाहिए।"

नरेन्द्रप्रभा ने कह दिया, "मैं भी यही समझती हूं कि मुझसे भूल हो
गई है। हमें उसे छोड़कर आना नहीं चाहिए था।"

चन्द्रमीड़ ने मुस्कराते हुए कह दिया, "तब तो हमें अभी चलकर पुनः
तारा के साथ जाकर बैठ जाना चाहिए और उनको कह देना चाहिए कि
हमसे भूल हो गई थी।"

"नहीं।" नरेन्द्रप्रभा ने कहा, "अब यह ठीक नहीं। देखो, मैं उ
भोजन के उपरान्त इस स्थान पर बुलाती हूं।"

दासी को आज्ञा दे दी गई कि जब तारा अपने आगार में जाए तो
कहना कि राजमाता उसकी प्रतीक्षा कर रही हैं।

इसके परिणामस्वरूप भोजनोपरान्त माता जी, भाई, भावज और पत्नी के सामने आ बैठा। उसने आते ही बात आरम्भ कर दी। वह पूछने लगा, "हां, मां ! अब बताओ, क्या कहती हो ?"

"तुम मधु को वहां मेरी स्वीकृति के बिना ले आए थे। क्यों ?"

"मां ! इसलिए कि मैं अब सयाना हो चुका हूं और मुझे अब अधिकार है कि मैं जिसे चाहूं, अपनी पत्नी बनाऊं। मेरे अधिकार का सबसे बड़ा लक्षण यही हो सकता है कि घर के लोग मुझे सयाना मानें।"

"हां, यह तो मानती हूं; परन्तु मैं तो तुमसे बड़ी हूं, इसलिए तुम्हें मेरा कहा भी तो मानना चाहिए।"

"मां ! मैंने अपने अधिकार की बात कह दी है। अब तुम यह बताओ कि मैं क्या करूं ?"

"तुम्हें अपने बड़े भाई और इस के [illegible] का कहा मानना चाहिए।"

"परन्तु भैया तो कहता है कि मधु से सम्बन्ध न रखूं।"

"देखो, वह तुम्हारी इस बात को मान गया, परन्तु तुम्हें उसकी दूसरी बात मान जानी चाहिए।"

"क्या ?"

"परन्तु तारा !" चन्द्र ने विनम्र हो कहा, "कार्यालय में तुमने महा-
य का अपमान कर उसकी प्रतिष्ठा कार्यालय में कम की है। इससे तो
ज्य-कार्य चल नहीं सकेगा।"

"मैं ऐसे व्यक्ति को जानता हूं, जो मेरे अधीन रहकर कार्य कर सकता
है। मैं चाहूंगा कि उसे महामात्य वना दिया जाए।"

"कौन है वह ?"

"राधा गांव का एक ज़मींदार है। सूरत-शक्ल से वह वर्तमान महा-
मात्य से अधिक दवदवेवाला है। पढ़ा-लिखा विद्वान है और वहुत ही
वुद्धिमान भी है।"

तारा ने रघुनाथ की प्रशंसा केवल उसकी नियुक्ति कराने के लिए ही
कर दी। वैसे वह उसके विपय में कुछ नहीं जानता था।

"अच्छा, तो उसको मेरे सम्मुख उपस्थित करना। मैं अपने गुरुजी के
सम्मुख उसकी परीक्षा लूंगा और यदि वह गुरुजी को पसन्द आया तो
पहले उसे मन्त्री और पीछे महामात्य नियुक्त कर दूंगा।"

"गुरुजी के सामने क्यों ?"

"यह इसलिए कि वह उसके ज्ञान और अनुभव की परीक्षा ले सकें।
मैं तो उतना ही पढ़ा हूं, जितना कि तुम हो, और परीक्षक तो परीक्षार्थियों
से अधिक योग्य होना चाहिए।"

"अच्छी वात है। उसे उपयुक्त काम पर लगा दो, जहां से वह उन्नति
करता हुआ महामात्य तक पहुंच सके।"

१०

रघुनाथ मध्याह्न के समय राज्य-कार्यालय में राजेश्वर के साथ आ
पहुंचा। उसने राजेश्वर को वताया था कि तारामीड़ से उसकी अकस्म
भेंट हो गई है और राजकुमार ने उसे वुलाया है। राजेश्वर इस आश
कि पण्डित रघुनाथ की नियुक्ति पर भी उसे कुछ तो प्रतिकार मिलेग
साथ चल पड़ा था।

महामात्य ने तारामीड़ को कार्यालय के काम से मुक्त कर

स्थान पर एक अधीनस्थ कर्मचारी को वहां लगा दिया था। तारामीड़ को यह अखरा तो था, परन्तु वह चुप कर रहा। वह अपने आगार में बैठा अपने उद्देश्य और उद्देश्य तक पहुंचने की योजना पर विचार कर रहा था।

वह चाहता था कि उसके जीवन का अन्तिम ध्येय है कश्मीर-नरेश बनना। इसके लिए पहला पग है महामात्य-पद पर पहुंचना। वह देख रहा था कि विष्णुदत्त के रहते वह इस पद को प्राप्त नहीं कर सकता। उसकी कार्यकुशलता, न्यायप्रियता और लोकख्याति इतनी अधिक थी कि वह उसके रहते उन्नति कर नहीं सकेगा।

तारामीड़ को यह भी आशंका थी कि यदि उसके रहते उसके बड़े भाई का देहान्त हो गया तो महामात्य चन्द्रमीड के बड़े लड़के चन्द्रकान्त को राजकुमार घोषित कर स्वयं शासक बन राज्य करेगा। इस कारण वह अपने और राज्य के बीच इस कांटे को निकालना चाहता था।

वह इन्हीं विचारों में लीन था कि प्रतिहार ने सूचना दी, "राजेश्वर पाण्डेय अपने साथ एक व्यक्ति को भेंट के लिए लाया है।"

"ले आने दो।"

प्रतिहार ने राजेश्वर और रघुनाथप्रसाद को भीतर ले जाकर तारामीड के सम्मुख उपस्थित कर दिया।

जब प्रतिहार बाहर चला गया तो तारामीड ने रघुनाथप्रसाद से पूछ लिया, "यह आपको कहां मिल गए?" तारा का आशय राजेश्वर पाण्डेय से था।

"श्रीमान्! यह मेरे सेवक रामदेव वर्मन के परिचित हैं। आज यह उनसे मिलने आए थे तो मैंने आपकी सेवा में उपस्थित होने की बात बताई। इसपर यह भी साथ आ गए हैं। यह कहते हैं कि यह आपसे भली भांति परिचित हैं।"

"और राजेश्वरजी, आप इनको कैसे जानते हैं?"

"रामदेव वर्मन मेरे पूर्वपरिचित हैं। वह ज्योतिषी हैं, वैद्य हैं और कुशल गणितज्ञ हैं। मैंने इनके, मेरा अभिप्राय है कि रघुनाथजी के सुपुत्र को आज ही राजकीय कोषागार में लेखाकार नियुक्त कराया है।"

"तो पिता-पुत्र दोनों राज्य-कार्य के लिए आए हैं?"

"जी हां, श्रीमान् !"

"देखो राजेश्वर ! इनको तुम महाराज के पास ले जाओ। इनके विषय में मैंने उनसे पहले कह रखा है और वह ही इनकी नियुक्ति करेंगे।"

रघुनाथप्रसाद इस बात से प्रसन्न था। वह चन्द्रमौड़ के भी सम्पर्क में आना चाहता था। राजेश्वर तो रघुनाथ की तारा से भेंट का वृत्तान्त सुन चुका था। इस कारण वह यह समझ गया कि तारा के पक्ष का व्यक्ति यदि चन्द्र द्वारा नियुक्त होगा तो यह भी ठीक ही होगा।

दोनों महाराज चन्द्रमौड़ के द्वार पर जा पहुंचे। सूचना भेजने पर उनको प्रतीक्षा करने के लिए कहा गया। वे द्वार पर खड़े प्रतीक्षा करते रहे। महामात्य निकला तो राजेश्वर के साथ खड़े व्यक्ति को देख एक क्षण तक राजेश्वर और रघुनाथ के मुख पर देखता रहा। तदनन्तर वह विचार-मग्न अपने आगार की ओर चला गया। भीतर चन्द्रमौड़ का गुरु मिहिर-दत्त महाराज के समीप बैठा था। राजेश्वर और रघुनाथ ने नमस्कार की तो दोनों को बैठने की स्वीकृति दे दी गई। इनके बैठते ही मिहिरदत्त ने पूछना आरम्भ किया।

मिहिरदत्त ने पूछा, "आपका शुभ नाम क्या है ?"

"रघुनाथप्रसाद।" नीलकण्ठ ने उत्तर दिया।

"क्या पढ़े हो ?"

"देव भाषा।"

"मेरा यह प्रश्न नहीं है। मैं यह पूछ रहा हूं कि किस शास्त्र के ज्ञाता हो ?"

"महाभारत मेरा प्रिय ग्रन्थ है। वैसे रामायण और उपनिषदादि ग्रन्थ भी पढ़ा हूं।"

"अच्छी बात। यह बताओ कि प्राणी-शरीर में चेतन तत्त्व क्या करता है ?"

रघुनाथ कुछ देर तक विचार कर कहने लगा, "वह सुनता, देखता, स्पर्श करता, मनन करता, स्मरण करता, सूंघता तथा चखता है।"

"यह कैसे कर सकता है ?"

"अपनी चेतनशक्ति से।"

"वह जब किसीकी हत्या करता है, तो भी उसी चेतन के आश्रय करता है ?"

"जी हां।"

"मनुष्य का चेतन हत्या भी कर सकता है ?"

"जी।"

"परन्तु सब तो नहीं करते । उदाहरण के रूप में मैंने किसीकी हत्या नहीं की।"

"हां, यह सम्भव है।"

"हत्या करना चेतन का गुण नहीं ?"

"नहीं।"

"तो फिर चेतन यह क्यों करता है ?"

"कामनाओं से प्रेरित वह ऐसा करता है।"

"तो जो हत्या नहीं करते, उनमें कामना नहीं होती क्या ?"

"होती है, परन्तु उसकी दिशा दूसरी ओर हो जाती है। मेरा अभि-प्राय है कि वह कामना तो रखता है, परन्तु किसी दूसरी बात की कामना करने लगता है।"

"फिर हत्या करने और न करने की कामना करनेवाले में अन्तर क्या है ?"

"हत्या करने से मनुष्य राजदण्ड का भागी होता है।"

"परन्तु कई है, जो छुपकर हत्या करते हैं और राजदण्ड से बच जाते हैं।"

"श्रीमान् ! इसपर भी दण्ड तो मिलता है। इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में।"

इतना कुछ पूछ मिहिरदत्त ने कह दिया, "यह व्यक्ति सेवा-कार्य में लिया जा सकता है।"

चन्द्रमौड़ ने पूछा, "आप किस पद पर नियुक्त होना चाहते हैं ?"

इस पूर्ण वार्तालाप से उत्साहित हो रघुनाथ ने कह दिया, "मैं तो अपने को राज्य का मन्त्री होने के योग्य मानता [redacted]।"

चन्द्रमौड़ ने प्रश्नभरी दृष्टि से मिहिरदत्त की ओर देखा तो उसने कह

या, "यह महानुभाव योग्यता में तो मन्त्री बनने के योग्य है, परन्तु आचरण के विषय में जांच करनी चाहिए। एक मन्त्री को सत्यवक्ता, धीर, वीर और संयमी होना चाहिए। ये बातें तो व्यवहार करते हुए देखने की हैं। यह बातों से नहीं माना जा सकता।"

"देखिए रघुनाथजी !" चन्द्रमीड़ ने कहा, "मैं आपको राज्य का सामान्य मन्त्री परीक्षार्थ छः मास के लिए नियुक्त करता हूं। इस काल में आपकी योग्यता का निरीक्षण होगा।"

"तो महाराज ! आज्ञा लिख दीजिए।"

महाराज ने ताली बजाई और प्रतिहार के भीतर आने पर महिधर लिपिकार को बुलवा लिया। महिधर एक वृद्ध व्यक्ति था, जो किसी समय नीलकण्ठ के अधीन कार्य कर चुका था।

अब महाराज ने आज्ञा लिखा दी, "आज शक सम्वत् सात सौ बीस में एक पण्डित रघुनाथप्रसाद को परीक्षणार्थ मन्त्रिमण्डल में रिक्त स्थान पर नियुक्त करता हूं। मैं आज से ही इनको काम के लिए महामात्य विष्णुदत्त के पास भेजता हूं और आज्ञा करता हूं कि इनको नियुक्ति-पत्र मिल जाए।"

यह आज्ञा चन्द्रमीड़ ने महिधर से लेकर रघुनाथ के हाथ में देते हुए कहा, "आप महामात्य से मिल लें।"

जब राजेश्वर और रघुनाथ आगार से निकल गए तो महिधर ने खड़े हो नमस्कार करते हुए कहा, "महाराज ! यदि भूल-चूक क्षमा करें तो एक निवेदन करूं ?"

"हां, बताओ ! क्या कहते हो ?"

"मुझे इस व्यक्ति का नाम रघुनाथ प्रतीत नहीं होता।"

"कैसे कहते हो यह ?"

"मुझे यह आपके पिता महाराज प्रतापादित्य का हत्यारा नी प्रतीत होता है। भूल-चूक क्षमा, इस कारण कह रहा हूं कि मुझे सोलह वर्ष हो चुके हैं और मेरी दृष्टि वृद्धावस्था के कारण दुर्ब है। इसपर भी मैं महाराज को निवेदन कर रहा हूं कि इस पड़ताल की जाए।"

"ठीक है, महिधरजी, धन्यवाद ! मैं आपकी बात पर विचार करूंगा।"

महिधर चला गया तो चन्द्रमौड ने गुरु मिहिरदत्त की ओर देखा तो गुरुजी ने कह दिया, "मैं समझता हूं कि इसे सेवा में ले ही लेना चाहिए। इससे इसके विषय में जांच की जा सकती है और यदि इसको सेवा में न लिया गया तो इसे किंचित् मात्र भी सन्देह होने पर यह भाग सकता है। तब इसे पकड़ना अति कठिन हो जाएगा। इसपर भी इसके विषय में गुप्त जांच होनी चाहिए और यदि आपके लिपिकार का कथन सत्य हो, तो इसे फांसी का दण्ड दिया जाना चाहिए।"

महामात्य के आगार में रघुनाथप्रसाद और राजेश्वर पहुंचे तो रघुनाथ ने महाराज का आज्ञा-पत्र महामात्य के हाथ में दे दिया। विष्णुदत्त ने आदेश पढ़ा और फिर रघुनाथप्रसाद के मुख पर ध्यान से देखकर राजेश्वर को कहा, "इन्हें तारामौड ने भेजा है ?"

"नहीं, श्रीमान् ! मेरे एक मित्र हैं रामदेव वर्मन। यह उनके मित्र हैं। उनके कहने पर मैं इनको लाया हूं। इनके गुह्य गुणों का मुझे ज्ञान था। महाराज के गुरुजी ने भी इनकी परीक्षा ली है। वह भी उसी परिणाम पर पहुंचे हैं, जिसपर मैं पहुंचा था।"

"अच्छी बात है। इनको मेरे पास रहने दो और तुम जाओ। मैं इनको काम समझाना चाहता हूं।"

राजेश्वर उठा और आगार से निकल गया। उसके जाते ही विष्णुदत्त ने रघुनाथ से पूछा, "आपने इस व्यक्ति को यह सेवा-कार्य दिलाने के लिए क्या कुछ देने का वचन दिया है ?"

रघुनाथ समझ गया कि राजेश्वर के विषय में महामात्य को ज्ञात है कि वह रुपया लेकर अपने प्रभाव का प्रयोग करता है। अतः रघुनाथ ने राजेश्वर की सफाई देने के स्थान पर यह मान लिया कि वह उससे धन पाने की आशा में उसके लिए भाग-दौड़ कर रहा है। यद्यपि कुछ निश्चय नहीं हुआ।

परन्तु विष्णुदत्त को रघुनाथ की इस बात पर विश्वास नहीं आया। इस कारण उसने पूछ लिया, "यह व्यक्ति अपने पिता का काम भी बिना

रघुनाथप्रसाद वहां से भागने का अवसर मिलते ही भाग खड़ा हुआ। वह अनुभव कर रहा था कि उसका मस्तिष्क चक्कर खा रहा है। वह स्थिर पग उठा नहीं सकता। वह अपने घर को भागा। घर पर पण्डित विभूतिचरण कुछ अन्य लोगों में बैठा अपनी ज्योतिष-विद्या के चमत्कार बता रहा था। रघुनाथ उनको छोड़ अपने आगार में चला गया और चादर तान पलंग पर लेटकर विचार करने लगा कि गांव को भाग जाए अथवा अपने को स्वतः प्रकट कर क्षमायाचना करे और अपने व्यवहार को इस बुद्धिमान महामात्य के अधीन कर रहे।

उसे कुछ ऐसा समझ आने लगा था कि इस पण्डित के तान्त्रिक व्यवहार से प्रभावित हो वह अपने शान्त और सुखी जीवन को छोड़ इस भयावह परिस्थिति में आ फंसा है।

ललितादित्य अपनी मां के साथ राज्यप्रासाद के एक कोने मे परिवार से पृथक् रहता था। उसकी मां पद्मावती यद्यपि परिवार मे तिरस्कृत रहती थी, परन्तु उसने पिछले सत्रह-अठारह वर्ष से अपने को राजकीय कामो से अलिप्त रखा हुआ था। नरेन्द्रप्रभा तो उसके साथ बोलती तक नही थी। दोनो को मिले महीने और वर्ष हो जाते थे।

ललितादित्य जब तीन-चार वर्ष का हुआ तो मां ने अपने अकेले लड़के की शिक्षा का प्रबन्ध स्वय ही करना आरम्भ कर दिया। ललितादित्य प्रतिभावान बालक था और वह द्रुतगति से उन्नति करने लगा तो पद्मावती को समझ आया कि इस होनहार लड़के की शिक्षा का प्रबन्ध राज्यप्रासाद केबाहर किसी विद्वान द्वारा होना चाहिए।

ललितादित्य अभी सात वर्ष का ही हुआ था कि पद्मावती ने महामात्य को एक पत्र लिखा था कि उसके लड़के की शिक्षा का राज्य-परिवारोचित प्रबन्ध करने की कृपा की जाए।

इस पत्र के मिलने पर विष्णुदत्त स्वय पद्मावती से मिलने आया और मिलकर पद्मावती की पुत्र के प्रति इच्छा का ज्ञान प्राप्त करने लगा।

विष्णुदत्त ने कहा, "रानीजी ! महारानी के पुत्रों के लिए राज्य ने एक अति विद्वान पण्डित मिहिरदत्त का प्रबन्ध किया है। यदि आपकी इच्छा हो, तो उनके साथ ललित का भी प्रबन्ध कर दिया जाए।"

"मैं अपने पुत्र का उनके साथ पढने मे उसका कल्याण नहीं मानती। मै उसके लिए पृथक् और राज्यप्रासाद से बाहर प्रबन्ध चाहती हूं।"

"यह किसलिए ?"

"मैंने राज्यप्रासाद का वातावरण देखा है। यहा कोई भी कार्य बुद्धि-युक्त नही हो रहा। यही मुख्य कारण है कि मैं पूर्ण प्रासाद के वातावरण से बचकर पृथक् रह रही हू। मैं चाहती हूं कि ललित इस वातावरण से पृथक् रहने का अभ्यास करे।"

"मैं तो यह समझा था कि आप अपने मन में अपने को दोषी मान राज्य-परिवार से मुख छुपाने के लिए उनसे मेलजोल नहीं रखती।"

"नही, श्रीमान् ! मैं अपने को सर्वथा दोषी नही मानती। एक बार किंचित् भूल की थी, परन्तु मैं समझती हूं कि मैंने अपनी भूल का प्रतिकार

महाराज, ललित के पिता, की जीवन-रक्षा कर दे दिया था। दूसरी वार हत्या के षड्यन्त्र में मेरा उतना भी भाग नहीं था, जितना पहली वार था। इसपर भी मैंने महाराज के जीवन वचाने का असफल यत्न किया था। तदनन्तर मैं तो परिवार से इस कारण पृथक् हुई थी कि वहां कोई भी तो वात वुद्धियुक्त नहीं होती थी। उस समय मेरा लड़का तीन वर्ष का हो चुका था। तव से मैं अपने लड़के को अन्य राजकुमारों से पृथक् रखने का यत्न करती रही हूं। अभी तक इसकी शिक्षा का प्रवन्ध मैंने स्वयं किया है। परन्तु मैं देख रही हूं कि यह शीघ्र ही मुझसे ऊपर चला जाएगा। तव मैं इसको शिक्षा नहीं दे सकूंगी।"

"ठीक है। आप ललित को मेरे निवासगृह पर नित्य व्रह्ममुहूर्त में भेज दिया करें। मैं पहले राजकुमार की परीक्षा करूंगा। तदनन्तर वह जिस योग्य होगा, उसीमें उसको प्रवेश देने का यत्न करूंगा।"

"अत्यन्त धन्यवाद है। मैं उसे अपनी दासी के साथ समय पर आपकी सेवा में भेजने का यत्न करूंगी। यत्न इस कारण कहती हूं कि वह अभी अल्पायु है और हमारे देश की राजधानी दिन के उस काल में सुरक्षित नहीं होती।"

विष्णुदत्त जानता था कि वह समय नगर में प्राय: एकान्त का होता है। सड़कें वीरान होती हैं। इसपर उसने कह दिया, "यदि रानीजी कहें तो उसको यहां से ले जाने का प्रवन्ध मैं कर दूं?"

"यह आपकी अत्यन्त कृपा होगी।"

इस प्रकार ललित महामात्य के घर जाने लगा। उसकी वुद्धि की प्रखरता तथा उसका छात्र-स्वभाव देख उसको सेना का उच्चाधिकारी वनाने का प्रवन्ध कर दिया गया।

ललितादित्य जव अठारह वर्ष का हुआ, तो उसे सेना में एक नायक के पद पर नियुक्त कर उसके अनुभव के साथ-साथ उसकी पदोन्नति करने लगा।

अव ललितादित्य वाईस वर्ष का युवक था और वह कश्मीर राज्य का उपसेनापति नियुक्त था। जव से वह सेना में कार्य करने लगा था, चन्द्रमीड़ का उससे सम्पर्क होता रहता था। आज एकाएक चन्द्रमीड़ को

अपनी सुरक्षा का विशेष प्रबन्ध करने की आवश्यकता अनुभव हुई, तो उसने ललित को बुला लिया।

ललितादित्य ने चन्द्रपीड की समस्या को सुनकर कह दिया, "भैया! मैं यत्न करूंगा कि सुरक्षा का अच्छे से अच्छा प्रबन्ध कर दूं, परन्तु मैं एक बात आपको बता देना चाहता हूं कि सेना में आपके विषय में कुछ अच्छे विचार नहीं। इससे सेना की रक्षा कुछ अधिक हितकर नहीं होगी। आपके छोटे भाई ने पहले ही सेना में आपके विरुद्ध वातावरण बना रखा है।"

"तो फिर मैं क्या करूं?"

"एक तो मुझे इस सुरक्षा-कार्य के लिए सेनापति से स्वीकृति मिल जाए और फिर अपने अधीन कार्य करनेवालों का निर्वाचन मुझे करने की स्वीकृति मिले। तब मैं अपनी रुचि के सैनिक लेकर प्रबन्ध आरम्भ कर दूंगा।"

"इसके लिए तो महामात्य को कहना पड़ेगा।"

"जी हां।"

परन्तु दूसरी ओर स्थिति द्रुतगति से बिगड़ रही थी। स्थिति के बिगड़ने में कारण तान्त्रिक औषधि का तारापीड की बुद्धि पर उत्तरोत्तर बढ़ रहा प्रभाव था। राज्यप्रासाद में मधु को ले आने के उपरान्त वह अपनी पत्नी चम्पावती को अपनी विमाता पद्मावती की भांति बहिष्कृत कर रखना चाहता था। अगले दिन उसने अपने भोजन का प्रबन्ध परिवार से पृथक् करने का आदेश जारी कर दिया। उसने अपना रसोईघर पृथक् कर लिया। पृथक् पाचक और भोजन खिलाने के लिए सेवक-सेविकाएं नियुक्त कर दीं।

चम्पावती यह सब प्रबन्ध देख रही थी। वह मन में विचार कर रही थी कि वह राजमाता के परिवार में अपना भोजन लिया करे अथवा अपने पति के साथ। बात प्रबन्ध हो जाने के उपरान्त पति-पत्नी में हो गई।

सायंकाल जब तारा अपने आगार में पहुंचा, तो एक के स्थान पर दो सेवक उसके लिए दूध और मिठाई ले आए। तारा मधु के साथ राज्य-प्रासाद के उस कक्ष के बैठकघर में बैठा था।

चम्पावती के तीनों बच्चे राजमाता के कक्ष में रहते थे। चम्पा उनको पिता के प्रभाव से पृथक् रखना चाहती थी। उस समय वह बच्चों के साथ राजमाता के कक्ष में गई हुई थी। पति के राज्य-कार्यालय से लौटने का समय होने पर वह अपने कक्ष में आ गई। वहां तारा मधु के साथ बैठकघर में बैठा हुआ अपने लिए दूध की प्रतीक्षा कर रहा था। चम्पावती आई ही थी कि दो सेविकाएं दूध लेकर आईं। वह विस्मय में अभी यह देख ही रही थी कि तारा ने माताजी की सेविका को कह दिया, "तुम वापस ले जाओ। हमने अपना पृथक् प्रबन्ध कर लिया है।"

उस सेविका ने दूसरी सेविका की ओर देखा और फिर बिना कुछ कहे दूध लिए लौट गई। चम्पा यह सब देख रही थी। उसने विस्मय में पूछ लिया, "तो मधु ने अपना पृथक् घर बना लिया है ?"

"हां।" उत्तर तारा ने दिया, "तुम बताओ कि किस घर में रहना चाहती हो ? माताजी के घर अथवा पति के ?"

"मुझे इस घर में रहते हुए पांच वर्ष से अधिक हो चुके हैं। मैंने अभी तक इसमें पृथक् घर बनाने की आवश्यकता अनुभव नहीं की। मुझे आज भी इसकी आवश्यकता अनुभव नहीं हो रही।"

"ठीक है। तुम उसी घर में रहो, जहां रहती हो। जिसको पृथक् रहने की आवश्यकता अनुभव हुई है, वह पृथक् रहेगा।"

"तो मैं जाऊं ?"

"यह तुम्हारे विचार करने की बात है।"

चम्पा भी वहां के बैठकघर से निकल गई। वास्तव में मधु के राज्य-प्रासाद में मालिक बन आने के उपरान्त वह उस स्थान से ग्लानि अनुभव कर रही थी। अब वह ग्लानि बहुत उग्र हो उठी। उसे वहां की स्थिति असह्य प्रतीत होने लगी।

चम्पा सीधी राजमाता के पास पहुंची। वहां चन्द्रमौड़ माताजी को कार्यालय में घटी घटना की बात बता रहा था। इस कारण चम्पा चुप-चाप वहां मां-पुत्र के सामने खड़ी सुनती रही।

चन्द्रमौड़ बता रहा था, "नीलकण्ठ आज सेवा-कार्य खोजता हुआ राज्य-कार्यालय में आया था।"

राजमाता इस समाचार पर चिन्ता व्यक्त करते हुए पूछने लगी, "तो तुमने क्या किया है ?"

" प्रातःकाल तारा ने कहा था कि एक अति योग्य व्यक्ति राज्य में सेवा-कार्य के लिए आएगा। मैं समझता हूं कि वह इसीके विषय में कह रहा था। नीलकण्ठ तारा के परम मित्र राजेश्वर के साथ ही आया था। उससे पहले राजेश्वर एक युवक को राज्य-कोषागार में लेखाकार के रूप में सेवा-कार्य दिलवा चुका था। मैं इस युवक के मुख को जाना-पहचाना समझ रहा था। नीलकण्ठ के आने पर मुझे सन्देह होने लगा था कि वह युवक नीलकण्ठ का ही पुत्र है। इस विषय पर गुरुजी ने सब बात जानकर कहा है, उसे सेवा करने का अवसर दे देना चाहिए, परन्तु उसपर देखरेख रखनी चाहिए। तब वह जो कुछ भी करेगा, उसपर देखरेख रखना सुगम होगा और यदि उसे सेवा में न रखा गया, तो वह कुछ अनर्थ भी कर सकता है, जिसका पता ही तब चले जब अनर्थ हो चुका हो।

" इसपर मैं विष्णुदत्तजी से मिला हू। नीलकण्ठ को नियुक्ति-पत्र देनेवाले वह ही हैं। उन्होंने भी नीलकण्ठ और उसके लड़के को पहचान लिया था। उनकी भी यही सम्मति है कि नीलकण्ठ को या तो फांसी पर चढा देना चाहिए अथवा उसको क्षमा कर उससे सेवा लेनी चाहिए। परन्तु यह तो पीछे होगा। इनके करने से पहले उसके यहां आने का प्रयोजन पता करना चाहिए।

" माताजी ! महामात्यजी का कहना है कि पहले वह पद्मावती के माता-पिता की प्रेरणा और सहायता से अपना कुकृत्य कर रहा था। देखना यह चाहिए कि अब वह किसकी प्रेरणा और सहायता से क्या करने आया है।

" महामात्य ने तो उसके पीछे गुप्तचर लगा दिए हैं और मैंने ललित को बुलाकर राज्यप्रासाद और अपनी सुरक्षा के लिए सेना को लगा दिया है।

" ललित बिना सेनाध्यक्ष की स्वीकृति के कुछ कर नहीं सकता था। इस कारण महामात्य की स्वीकृति से सेनाध्यक्ष की सम्मति से कुछ सैनिक बिना गणवेश के इस कार्य पर नियुक्त कर दिए गए हैं।"

राजमाता यह सब वृत्तान्त पीत मुख, भयभीत हो सुन रही थी। नीलकण्ठ का नाम और उस कार्य का वृत्तान्त चम्पावती ने भी सुना हुआ था। इस कारण वह भी इसपर चिन्ता व्यक्त कर रही थी। उसने एक ही बात कही; "माताजी ! यह राज्य-कार्य का ढंग नहीं है। उसे तो उसी समय भाई साहब को अपने खड्ग से यमलोक पहुंचा देना चाहिए था।"

राजमाता ने बात बदल दी। उसने चम्पा से पूछा, "और तुम किस कार्य से आई हो ?"

"मुझे आपके पुत्र ने कहा है कि मैं माताजी के घर में रह सकती हूं, क्योंकि उन्होंने अपना पृथक् घर बना लिया है, जिसमें वह मधु के साथ रहना चाहते हैं।"

"बात तो ठीक है।" नरेन्द्रप्रभा ने कहा, "तुम भी यहां रह सकती हो।"

"मैं विस्मय इस बात का कर रही हूं कि आपमें सहनशक्ति की कोई सीमा भी है अथवा नहीं। महाराज अपने पिता के हत्यारे को सामने देख ऐसे शान्त हो तर्क-कुतर्क कर रहे थे, मानो दार्शनिकों की सभा में बैठे किसी मीमांसा के विषय पर विचार कर रहे हों। आप राजमाता होकर स्पष्ट रूप में विद्रोह हो रहा देख कुछ भी करने को तैयार नहीं।"

"और तुम क्या करने की सम्मति देती हो ?"

"पिताजी के उस हत्यारे को तो सड़क के किनारे अखरोट के पेड़ से फांसी लटकाकर भूमि को भार से मुक्त कर देना चाहिए था और माताजी को, मधु को जूतों से पिटवाकर राज्यप्रासाद से भगा देना चाहिए था, और यदि पुत्र विरोध करे तो उसको भी निकाल देना चाहिए। जब राज्य में अपराधियों को क्षमा किया जाने लगे, तो राज्य नहीं रह सकता।"

"परन्तु बेटी ! हमने भी तो परलोक में इस जन्म के कर्मों का फल भोगना है। राजा हुए तो क्या हुआ ! हमारे लिए भी तो यह विधान है कि जैसा करेंगे, वैसा फल भोगेंगे।"

"आप राज्य नहीं कर सकेंगे। जहां अपराधियों को क्षमा किया जाए, वहां निर्दोष लोग दण्डित होते हैं। जहां आलसी, प्रमादी और अकर्मण्यों को पुरस्कार दिए जाएं, वहां कर्मठ, ईमानदारों को उनकी ईमानदारी पर

दण्ड दिया जाता समझ में आता है।"

"बहुत नाराज हो रही हो, बेटी !" नरेन्द्रप्रभा ने कहा, "बैठो।"

इसपर नरेन्द्रप्रभा ने सेविका को कहा, "ऐ रामी ! बहू के लिए कहवा बनाकर लाओ।"

चम्पा क्रोधवश कह तो गई, परन्तु माताजी को शान्त भाव से ही कहते और उसपर दयाभाव प्रकट करते देख चुप हो गई। उसके मन में भी सन्देह होने लगा कि कदाचित् वह गलत कह रही है और उसके ज्येष्ठ और सास का व्यवहार ही ठीक है।

२

जब चम्पावती मधु और तारामीड़ को छोड़ अपनी सास के आगारों को चली गई, तो मधु मुस्कराते हुए बोली, "यह गोरी स्त्री मुझे देख आग-बबूला हो उठती है। भाग्य अपने-अपने हैं।"

भाग्य की बात कहते-कहते वह एकाएक चुप कर गई। उसे पहले दिन की घटना स्मरण हो आई थी। वह अपने प्रिय राजकुमार के साथ बजरे में बैठी नदी का मनोरम दृश्य देख रही थी कि उसकी दृष्टि एक नौका में बैठे एक व्यक्ति पर पड़ी, तो वह समझी थी कि वह तान्त्रिक विभूतिचरण को देख रही है। उसने राजकुमार तारामीड़ को बताया तो तारामीड़ ने उस तान्त्रिक के साथी से बात की। मधु को यह घटना स्मरण आई तो उसने तारा से पूछ लिया, "उस कल वाले, क्या नाम बताया था उसने ? हां, रामदेव वर्मन। उसका पता किया है आपने ?"

"मैंने आज उसके मालिकसाथी को इसी कारण बुलाया था कि उसका पता करूं। वह मिलने आया था और मैंने उसके पीछे जासूस लगा दिए हैं। एक बात और हुई है कि उस वर्मन का मित्र मेरा भी मित्र निकल आया है और उसे मैंने आज रात को यहां राज्यप्रासाद में बुलाया है। उससे भी पता करूंगा।"

"मुझे अभी भी यह समझ आ रहा है कि वह पण्डित विभूतिचरण ही है। वह मेरे पिताजी का मित्र था और अपनी तान्त्रिक विधि से अनेकों

चमत्कार दिखाता था।"

"क्या दिखाता था ?"

" एक बार पिताजी अपने एक साथी से जुआ खेलने लगे तो हारते ही चले गए। उन्होंने पूर्ण घर का सामान हार डाला। जीतनेवाला परिवार के मुकाबले में परिवार की बाज़ी लगाने की चुनौती देने लगा। उसकी पत्नी और बच्चे सुन्दर, गौरवर्णीय और हृष्ट-पुष्ट थे। उसके मुकाबले में हम तो मैले रंग की मां-बेटी हैं। हमारे पिताजी ने कहा भी कि हम उसकी पत्नी और बच्चों से असुन्दर और असभ्य हैं। इसपर भी वह बाज़ी लगाने का हठ करता रहा। पिताजी ने कहा कि अगले दिन वह अपनी पत्नी से पूछकर बाज़ी लगाएंगे। वास्तव में वह अपने मित्र तान्त्रिक से सम्मति करना चाहते थे। बात निश्चय हो गई कि पत्नियों से पूछकर बाज़ी लगाई जाए। पिताजी के मित्र तान्त्रिक ने बताया कि यदि वह अपने मित्र से जुआ खेलने के पहले अमुक मन्त्र का तीन बार जप कर लेंगे, तो वह निश्चय ही जीत जाएंगे। पिताजी अगले दिन गए और अपने मित्र तान्त्रिक के कहे अनुसार जुआ खेले और उस जुआरी की पत्नी और तीन बच्चे जीतकर घर ले आए।

" माताजी ने कहा—यह क्या किया है आपने ? इनको खिलाना-पिलाना पड़ेगा।

" पिताजी ने उस जीत के माल को एक कोठरी में बंद कर ताला लगाया और तान्त्रिक मित्र से पूछने गए कि अब क्या करें। उस तान्त्रिक ने उपाय बताया। पिताजी ने उस स्त्री को वेश्यागार के ठेकेदार के पास बेच दिया और उन बच्चों को एक कामभोज के सौदागर के पास बेच दिया। इससे हमारे पास सब हारा हुआ सामान और आभूषण इत्यादि पुनः आ गए।"

तारामीड़ यह वर्णन बहुत रुचि से सुन रहा था। उसने कहा, "मैं उस व्यक्ति से मिलकर पता करूंगा कि वह सत्य ही ऐसा कर सकता है।"

"तो आप भी किसीसे जुआ खेलेंगे ?"

तारामीड़ हंस पड़ा। हंसते हुए बोला, "मैं स्त्रियों की बाज़ी नहीं लगाऊंगा। मैं तुमको तो अपनी आत्मा से भी प्रिय समझता हूं। इससे

तुम्हारी बाजी तो लगा नहीं सकता। मैं तो कश्मीर राज्य की बाजी अपने बड़े भाई से खेलना चाहता हूं, जैसे ही वैसे दुर्योधन और युधिष्ठिर ने खेली थी।"

"परन्तु दुर्योधन तो मारा गया था और उसकी पत्नी को सती होना पड़ा था।"

"वह इसलिए कि युधिष्ठिर के पक्ष में एक छलिया कृष्ण था। भैया के पास कोई वैसा छलिया नहीं है।"

"मैं जुआ खेलने की सम्मति आपको नहीं दूंगी।"

"तो किस बात की सम्मति दोगी? मैं कश्मीर-नरेश बनूंगा तो तुम महारानी भी तो बनोगी!"

"यह बहुत कठिन है। मेरा आपसे विवाह तो हुआ नहीं।"

"हमारी माताजी का भी तो पिताजी से विवाह नहीं हुआ था और वह महारानी और राजमाता बन गई हैं।"

मधु चुप कर गई। उसने बात बदल दी। उसने कहा, "आज नदी पर भ्रमण करने नहीं चलेंगे?"

"चाहो तो चल सकते हैं।"

"आपका मित्र उस तान्त्रिक को लेकर कब आनेवाला है?"

"उसको मैंने रात के भोजन के समय बुलाया है।"

"उसमें तो अभी तीन घण्टे हैं। चलिए, तनिक घूम आएं।"

दोनों चल पड़े। जब दोनों राज्यप्रासाद के द्वार पर पहुंचे तो राज्य-प्रासाद के सब सुभट्ट लापता थे और उनके स्थान पर कुछ सैनिक सैनिक-गणवेश पहने खड़े थे। अन्तःपुर के द्वार और राज्यप्रासाद के द्वार पर वे चारों ओर खड़े थे। तारामीड़ एक सुभट्ट को, जिसे वह अपना विशेष व्यक्ति समझता था, आज्ञा देनेवाला था कि उसके लिए रथशाला से रथ ले आए जिससे वे नदी पर भ्रमण करने जा सकें, परन्तु उसे वह कहीं दिखाई नहीं दिया। तब उसने वहां पर एक अपरिचित से पूछा, "वीरा सुभट्ट कहां है?"

उत्तर मिला, "मैं नहीं जानता।"

"और तुम कौन हो?"

"महाराज चन्द्रमोड़जी का सैनिक।"

"यहां किसलिए खड़े हो ?"

"सव भीतर जानेवालों को देखने के लिए कि वे भीतर किसी प्रकार का अस्त्र-शस्त्र लेकर न जाएं।"

"और जव मैं घूमकर आऊंगा तो मुझे भी देखोगे ?"

"हमें यही आज्ञा है।"

"किसकी आज्ञा है ?"

"महाराज की।"

तारामीड़ विस्मय में मुख देखता रह गया। उसके मन में यह विचार आया कि कदाचित् यह नहीं जानता कि वह कौन है। इस कारण उसने पूछ लिया, "मुझे जानते हो कि मैं कौन हूं ?"

"नहीं। कदाचित् कोई राजकीय सेवक होंगे।" इतना कह वह मधु की ओर देखने लगा। मधु समान रूप-रेखा की स्त्री वहुत मूल्यवान वस्त्र पहने तारामीड़ के समीप खड़ी थी।

प्रहरी यह समझा था कि वह कोई रानीजी की दासी है, जो रानीजी के वस्त्र पहन अपने मित्र अथवा पति के साथ घूमने जा रही है।

सेवक का विशेषण अपने लिए प्रयोग होता देख तारामीड़ को क्रोध चढ़ आया और वह उसी समय माताजी से जाकर अपने वड़े भाई के विरुद्ध आरोप लगाने के विचार से भीतर लौट गया। मधु ने साथ चलते हुए पूछा, "अव किधर जा रहे हैं ?"

"मां से झगड़ा करने।"

"मां ने क्या किया है ? यह तो आपके वड़े भाई ने किया है। झगड़ा करना है तो उससे करो।"

तारामीड़ क्रोध से लाल-पीला होता हुआ अपने आगार में गया औ[र] अपना खड्ग लेकर मधु को वहां ही छोड़ भाई के आगार को चल पड़ा।

मधु भयभीत थी कि वह अपने जीवन की वाज़ी लगाने जा रहा [है।] वह इस प्रकार नहीं चाहती थी। वह जानती थी कि दोनों भाई युद्ध क[रें] तो वड़ा विजयी होगा। वह छोटे से अधिक वलवान और धीर-वीर थ[ा]।

परन्तु वह सात्त्विक वुद्धि का व्यक्ति दया और क्षमा की मूर्ति [वे]घर में आराम से अपनी पत्नी के साथ वैठा हुआ अध्यात्म-विद्[या]

विवेचना कर रहा था।

तारामीड़ भीतर जाने लगा, तो दासी ने कहा, "भैया! भीतर सूचना कर दूं। महाराज पत्नी के साथ हैं।"

परन्तु तारामीड़ हाथ से दासी को एक ओर हटाते हुए भीतर चला गया। भीतर चन्द्रमीड़ कमला से आत्मतत्त्व के विषय में युक्ति कर रहा था, जब तारा वहां पहुंचा। चन्द्र ने उसे देखा तो बोला, "आओ भैया! यह कह रही है कि मुझमें और इस प्रश्रय में कुछ भी अन्तर नहीं है।"

"भैया!" तारामीड़ ने कहा, "भाभी ठीक कहती है। तुम जैसे गधे को राज्यगद्दी मिल गई है।"

"परन्तु गधा भी तो प्रश्रय से श्रेष्ठ…।" आगे वह कह नहीं सका। तारामीड ने खड्ग से भाई का सिर काटकर रख दिया और बोला, "क्यों भाभी! है न ठीक प्रश्रय ही?"

कमला को जब समझ आया कि क्या हो गया है, तो उसके मुख से चीख निकल गई। तारामीड़ ने समझा कि वह वहां अकेला है। इससे यदि घर के सब सेवक अथवा द्वार पर खड़े सैनिक भीतर आ पता पा गए कि उसने क्या किया है, तो उसकी हत्या कर देंगे।

उसने कमलावती की चीख को रोकने के लिए दूसरा वार उसीपर ही किया और उसका सिर भी धड़ से पृथक् कर दिया। तारामीड ने यह समझा कि यह काम तो अधूरा है। इस कारण वह वहां से बच्चों के आगार में पहुंचा। वहां कमलावती के दो बच्चे और चम्पावती के तीनों बच्चे बैठे खेल रहे थे। उन्होंने जब चाचा को रक्तरंजित खड्ग लिए आगार में प्रवेश करते देखा, तो विस्मय में मुख देखते रह गए। तारा ने समय व्यर्थ गंवाना उचित नहीं समझा। उसने कमला के बच्चों का सफाया किया तो उसके अपने बच्चे चीखें मारते हुए भागे। वह उनके पीछे आगार के द्वार की ओर लपका। इतने में चन्द्रमीड के दास-दासियों ने हल्ला मचा दिया। राज-माता और चम्पा अपने आगारों से निकल बच्चों के आगार की ओर भागीं, तो तारामीड़ चम्पा के बच्चों में से एक की हत्या कर चुका था और दूसरे को पकड़ हत्या करने ही वाला था कि राजमाता लपककर उसको गोद में उठा बचाने का यत्न करने लगी। तारामीड का खड्ग चल

चुका था और वह उसकी माता को लगा और वह घायल हो लेट गई। चम्पा राज्यप्रासाद के द्वार की ओर 'बचाओ ! बचाओ !' का हल्ला करती हुई भागी।

द्वार पर खड़े सैनिकों ने राज्यप्रासाद में दास-दासियों की चीख-पुकार सुनी तो एक दर्जन के लगभग उसमें से भीतर को भागे।

उस समय तारामीड़ अपनी पत्नी की हत्या कर द्वार की ओर भागा जा रहा था कि सैनिकों ने उसे घेर लिया। वे समझे कि राज्य-प्रासाद का कोई सेवक वह हत्याकाण्ड कर रहा है। उन्होंने तारामीड़ को पकड़ लिया। तारामीड़ उनसे भी युद्ध करने लगा और दो-तीन वार में ही मार डाला गया।

अब सैनिकों ने राज्यप्रासाद पर अधिकार कर वहां पर घटी घटना की सूचना महामात्य को भेजी। कुछ सैनिक अपने शिविर में सूचना देने चले गए।

३

रघुनाथ अपने आगार में औंधे मुख लेटा हुआ अपने पुत्र सतीश की प्रतीक्षा कर रहा था। बाहर मकान की बैठक में बैठा रामदेव वर्मन मोहल्ले के कुछ लोगों को अपनी ज्योतिष-विद्या का फल दिखा धन बटोर रहा था। वह जानता था कि रघुनाथ राज्य-कार्यालय सेवा-कार्य की खोज में राजेश्वर पाण्डेय के साथ गया है। अतः वह जल्दी-जल्दी अपने ग्राहकों से निपट रघुनाथ के पास पहुंचा और पूछने लगा, "पण्डितजी ! क्या कर आए हैं ?"

"सब घोटाला हो गया है। मुझे महामात्य ने पहचान लिया है।"

"तो फिर आप यहां कैसे हैं ? आपका तो सिर धड़ से पृथक् हो चुका होना चाहिए !"

"यही तो लेटा-लेटा विचार कर रहा हूं कि इतना होने पर भी मुझे स्वतन्त्र किस कारण छोड़ दिया गया है।"

"तो पण्डितजी, अब यहां से तुरन्त भाग जाना चाहिए। कल उस मेघ

की लड़की ने भी मुझे पहचान लिया था। मेरे इनकार करने पर वह चुप कर गई थी, परन्तु मुझे उसकी आंखों से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसे मेरे कथन के सत्य होने पर विश्वास नहीं आया।"

"सतीश को आने दो। वह भी राज्य-कार्यालय में सेवा पा गया है। तब तीनों सम्मति करेंगे कि क्या किया जाए, और राजेश्वर भी तो अपना पुरस्कार पाने के लिए आनेवाला है!"

"उसे पुरस्कार तो वेतन मिलने पर देना चाहिए और मेरी सम्मति है कि हमको गांव वापस लौट जाना चाहिए। मैंने कल राजकुमार तारा के सम्मुख काल्पनिक गांव का नाम बताया था। वे ढूंढते फिरेंगे कि राधा गांव कहां है। तब तक हम अपने गांव में पहुंच जाएंगे।"

मध्याह्नोत्तर सतीश कार्यालय से लौटा, तो उसने एक नवीन बात बताई। वह यह कि उसके पीछे दो व्यक्ति ऐसे लगे हैं, जैसे वे उसकी देख-रेख कर रहे हों और वे उसके घर तक उसके पीछे आए हैं।

सतीश ने बताया, "मैं घर के द्वार पर पहुंचा तो वहां दो अन्य संदिग्ध व्यक्ति खड़े दिखाई दिए हैं। मेरा पीछा करनेवाले तो घर से दूर ही खड़े हो गए हैं। मैंने घर के समीप इन संदिग्ध ढंग से मकान के बाहर खड़े हुओं में से एक से पूछा—यहां किसलिए खड़े हो? वह बोला—हम ज्योतिषीजी से मिलने आए हैं। मैंने कहा—परन्तु ज्योतिषीजी तो भीतर हैं। भीतर जाकर बात कर लो। यहां किसलिए खड़े हो? वह बोला—हम अपने एक साथी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वह अभी आया नहीं। इस प्रकार मैं तो भीतर आ गया हूं, परन्तु वे बाहर ही खड़े हैं। इसका अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि हमारी देखरेख के लिए गुप्तचर लगा दिए गए हैं।"

इसपर विभूतिचरण ने कहा, "पण्डितजी! इस समय हमें चुपचाप यहां पड़ा रहना चाहिए। आधी रात के समय यहां से चुपचाप चल देंगे।"

सतीश ने कहा, "मेरी सम्मति यह है कि मैं अभी घोड़ा लेकर बाहर भ्रमण के लिए जाता हूं और देखता हूं कि मेरा पीछा करनेवाले भी मेरे साथ जाते हैं अथवा नहीं।"

"परन्तु शीघ्र ही लौट आना।"

सतीश गया तो रघुनाथ ने विभूतिचरण से कहा, "मेरे मन में एक

योजना आई है। वह यह कि मैं इस समय महामात्य से मिलने चला जाता हूं। इससे इन हमारी देखरेख करनेवालों के मन में विश्वास बैठ जाएगा कि हम कोई छोटे-मोटे अपराधी नहीं हैं। हम ऊंचे दर्जे के लोग हैं।"

"ठीक है, परन्तु मुझे तो भय लग रहा है कि यहां रहना शुभ नहीं। हमें गांव को लौट ही जाना चाहिए। अभी अधिकारियों के मन में संदेह ही है कि हम अमुक व्यक्ति हैं। अभी वे निश्चय नहीं कर सके। किया होता तो हम यहां इस मकान में स्वतन्त्र होने के स्थान पर वन्दीगृह में हथकड़ियों और बेड़ियों से बंधे हुए होते।"

सतीश ने जाने से पूर्व कहवा तैयार करने के लिए समावार में सामान डाल आग जला दी थी। उसका विचार था कि चौथाई घण्टा भ्रमण कर वह लौट आएगा और उसे ज्ञात हो जाएगा कि वही लोग उसके पीछे-पीछे हैं अथवा वे किसी अन्य प्रयोजन से वहां आए हैं।

रघुनाथप्रसाद जब कहवा बनाने गया तो उसमें आग जलती देख समझ गया कि सतीश शीघ्र ही लौटने का विचार रखता है।

जब तक कहवा तैयार हुआ और प्यालों में डाल वे पीने ही लगे थे कि सतीश लौट आया। उसने भी अपने लिए एक प्याले में डाल चुस्कियां लगाते हुए कहा, "पिताजी ! अब तो मेरा पीछा करनेवाले बाहर नहीं थे। मेरे पीछे न ही कोई गया और न ही आया, परन्तु मकान के बाहरवाले अभी भी सामने के पेड़ के नीचे खड़े हैं। मैंने उनसे पूछा—तो क्या अभी तुम्हारा साथी नहीं आया ? पहलेवाले व्यक्ति ने ही उत्तर दिया—नहीं। हम विचार कर रहे हैं कि फिर किसी दिन यहां आएंगे।"

"तो वे चले गए हैं ?"

"नहीं, अभी तो नहीं गए, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वे जाने ही वाले हैं।"

"अर्थात् हमारा सन्देह मिथ्या है ? हमारा पीछा नहीं किया जा रहा ?"

"पिताजी ! अभी निश्चय से नहीं कहा जा सकता। एक-दो दिन में पता चलेगा।"

"अपने सेवा-कार्य की बात बताओ !"

"अभी आज तो काम से परिचय ही होता रहा है। एक-दो दिन में काम समझ जाऊंगा। मेरा वेतन एक सौ रजत प्रति मास लगा है।"

"अच्छी बात है। मैं यहां के महामात्य से मिलने जा रहा हूं। आशा है कि दो घण्टे में लौट आऊंगा और तब विचार करेंगे कि हमें यहां रहना चाहिए अथवा नहीं।"

सतीश चुप रहा। वह कहवा पीता रहा। रघुनाथ ने अपना पेय समाप्त किया और कपड़े पहन घर से निकल गया। यद्यपि उनके घर के बाहर तो संदिग्ध व्यक्ति नहीं थे, इसपर भी नगर में सैनिकों की विशेष चहल-पहल थी। यह ललितादित्य और सेनाध्यक्ष के आदेश से हुआ था।

जब चन्द्रमौड़ ने ललितादित्य से अपने तथा राज्यप्रासाद की रक्षा के लिए सैनिक मांगे, तो वह अपने से उच्च अधिकारी सेनाध्यक्ष के पास जा पहुंचा और उससे महाराज की आज्ञा का वर्णन कर दिया।

सेनाध्यक्ष ने भी यही उचित समझा कि सैनिकों का प्रदर्शन राजधानी में हो जाना चाहिए। अतः तुरन्त छः सौ सैनिक नगर, राज्यप्रासाद और महाराज की सुरक्षा के लिए नियुक्त कर दिए। उन छः सौ में से दो सौ तो तुरन्त देखरेख के लिए नगर में लगा दिए गए और आठ-आठ घण्टे के उपरान्त उनकी बदली करने का प्रबन्ध कर ललितादित्य राज्यप्रासाद के उस कक्ष में जा पहुंचा, जहां वह अपनी माताजी तथा अपने परिवार के साथ रहता था।

जब नीलकण्ठ महामात्य के द्वार पर पहुंचा तो वहां भी विशेष सैनिकों का जमघट देख विस्मय करने लगा। वह मन में विचार करता था कि क्या यह उससे भयभीत हो इतना बड़ा प्रबन्ध किया गया है? उसे विश्वास नहीं आया। वह समझा कि यह सैनिक-हलचल तो किसी अन्य भय का प्रतीक है। वह मन में विचार करने लगा था कि इस विषय में वह महामात्य से बात करने का यत्न करेगा।

उसने भीतर सूचना भेजी तो उसे तुरन्त भीतर बुला लिया गया। महामात्य भी उससे खुलकर बात कर उसके राजधानी में प्रकट होने का कारण जानना चाहता था।

"आइए, नीलकण्ठजी! कैसे आना हुआ है?" विष्णुदत्त का प्रश्न था।

"मैं गांव में जहां प्रायः अनपढ़, उजड्ड, मूर्ख और गंवार लोग रहते हैं, वहां रहते-रहते ऊब गया था। इस कारण सभ्य जीवन व्यतीत करने के लोभ में पुनः यहां आ गया हूं।"

"परन्तु तुम्हें भय नहीं लगा कि यदि पहचाने गए तो अब फांसी पर लटका दिए जाओगे ?"

"भय तो था। उतना ही जितना कि हत्या करने के लिए आते समय लगा था। उस समय भी मरने का भय नहीं था और अब भी नहीं है। मरने से पुराने वस्त्र उतार देने की भांति देह बदल दी जाती है। इसपर भी भय तो था और वह किसी अन्य बात का था। पहले भी था और अब भी है। वह है जीवन को निरुद्देश्य व्यतीत करना। साथ ही उद्देश्य है आत्मा के उत्क्रमण का। मैं समझता था कि उस समय भी मैं आत्मा का उत्क्रमण कर रहा था और अब भी मेरा उद्देश्य यही है।"

"परन्तु नीलकण्ठजी ! मैं नहीं समझा और जो कुछ समझा हूं, वह वस्तुस्थिति से उलट है। मैं समझता हूं कि उस समय जो कुछ आपने किया था, वह आपकी जीवात्मा के लिए घोर नरक का द्वार खोलना था। अब तो मैं समझ ही नहीं सका कि आपने क्या किया है अथवा क्या करने जा रहे हैं, जिससे आप आत्मा की उन्नति की आशा करते हैं।"

"महामात्य महोदय, मैं समझाता हूं। मैं महाराज प्रतापादित्य को समाज में घोर अव्यवस्था उत्पन्न करनेवाला समझता था। मैं अपने-आपको एक ब्राह्मण समझता हुआ समाज की सुरक्षा के लिए प्रतापादित्य की हत्या कर अपना कर्तव्य-पालन करना चाहता था। वह मैंने किया। उसने घोर पाप किया था। उसको हत्या कर मैं अपने इस कर्म में स्वयं मारे जाने पर भी आत्मोन्नति में साधन ही मानता।"

"परन्तु तुम तो यह कहते थे कि पद्मावती को उसका अधिकार दिलवाने के लिए ही तुमने प्रतापादित्य की हत्या की थी ?"

"श्रीमान् ! मेरे कर्म का यह फल होनेवाला था, परन्तु आपने उस फल को फलीभूत होने नहीं दिया।"

"कैसे ?"

"आपने उसकी अविवाहिता की सन्तान को राज्याधिकारी बना

दिया। आप ख्यातिप्राप्त महामन्त्री और न्यायाधीश थे। आपकी ख्याति ने मेरे प्रयास को विफल कर दिया।"

"तो क्या यह उचित नहीं था कि उस रानी की सन्तान को राज्याधिकारी बनाऊं, जो देवता के चरणों में बैठ अपने जीवन की बाजी लगा दे? पद्मावती में क्या गुण था?"

नीलकण्ठ ने कहा, "मैं किसीकी मान-हानि के लिए नहीं कह रहा। मैं व्यक्तियों की मान-प्रतिष्ठा का कुछ भी मूल्य नहीं समझता, यदि उस प्रतिष्ठा का उपयोग ठीक काम के लिए न हो।

"मरण-पर्यन्त भूख-हड़ताल रखनेवाला एक शौर्यवान व्यक्ति माना जा सकता है, परन्तु इसका यह अर्थ कैसे हो गया कि उसकी सन्तान राजा बनने के योग्य है? श्रीमान्! मैं अभी भी यह समझता हूं कि व्रत रखने से कोई राजाओं की मां बनने के योग्य हो सकती है, परन्तु उसके लिए उसका चरित्र एक आदर्श चरित्र होना चाहिए।"

विष्णुदत्त अभी भी निरुत्तर नहीं हुआ था। उसने कहा, "मैंने सुना है कि राजमाता नरेंद्रप्रभा की सिफारिश आपने भी की थी?"

"हां, परन्तु उसे राजमाता तथा पटरानी बनाने की सिफारिश नहीं की थी। उसे प्रतापादित्य एक अविवाहित दासी के रूप में रख सकता है, इसके लिए मेरी सम्मति थी। प्रतापादित्य ने अपनी विवाहित पत्नी का त्याग कर दूसरे की भार्या को वासनाविभूत हो एक भली स्त्री के सिर पर बिठा रखा था।

"श्रीमान्! मैंने उस समय जो कुछ किया था, लोकहित में किया था और यदि आप यहां के महामात्य न होते, तो निश्चय ही पद्मावती का लड़का कश्मीर-नरेश होता। मैं समझता हूं कि तब यहां का जनमानस अधिक श्रेष्ठ होता। किसी एक काम में ख्याति, जिसका राज्य-कार्य से कुछ भी सम्बन्ध नहीं, राज्य दिलाने में योग्य नहीं हो सकती।"

विवाद में विष्णुदत्त निरुत्तर हो रहा था। उसने बात बदलकर पूछ लिया, "मान लिया कि उस समय आपका कर्म ठीक दिशा में था, परन्तु अब क्या पुनः नरेन्द्रप्रभा की सन्तान को पदच्युत करने के विचार से आए हो?"

नीलकण्ठ आया तो इसी विचार से था और उसने इस दिशा में कार्य भी किया था, परन्तु वह अपने मुख से यह स्वीकार नहीं कर सका। उसने कहा, "श्रीमान् ! मैं काल की गति को उलट नहीं सकता। इस कारण अब तो अपने को कालचक्र के साथ चलाता हुआ अपनी वृद्धावस्था को सुखमय करने आया हूं।

"चाहता तो यह था कि गुमनाम रहकर शान्ति से जीवन व्यतीत कर सकूं, परन्तु आपकी सूझबूझ की दाद देता हूं कि आपने मेरे बहुरूपियापन को छेदकर मेरे रहस्य को जान लिया है।"

"देखो पण्डित नीलकण्ठ, तुम्हारी परीक्षा पण्डित मिहिरदत्त ने ली और उनका कहना है कि आप मन्त्री बनने के योग्य हैं; परन्तु मैं जो आपको पहचान गया हूं, आपको अवसर देता हूं कि आप अपनी नीयत की शुद्धता का प्रमाण दें। तब तक तुम्हारी देखरेख गुप्तचर विभाग करेगा। अब भी वे तुम्हारी गतिविधियों को देख रहे हैं।

"उन्होंने तुम्हारे निवास-स्थान को देख लिया है और चौबीस घण्टे वे तुम्हें अपनी दृष्टि में रखेंगे। यदि तुम अपने पद का दुरुपयोग नहीं करोगे, तो यह सम्भव है कि तुम्हारी पदोन्नति हो जाए।"

"मुझे ज्ञात है कि मेरी देखरेख हो रही है।"

"नहीं, तुम्हें कुछ ज्ञात नहीं। तुमने केवल उनको देखा है, जो तुम्हारा निवास-स्थान देखने गए थे; परन्तु जो तुम्हारी देखरेख कर रहे हैं, वे दूसरे हैं और उनको तुम देख नहीं सकते। एक बात और सुन लो।"

इस समय विष्णुदत्त के मकान के बाहर भारी हल्ला हुआ। विष्णुदत्त ने द्वार की ओर देखा, तो एक प्रतिहार भीतर आकर बोला, "श्रीमान् ! अनर्थ हो गया है !"

"क्या हुआ है ?"

"महाराज, राजमाता और उनके पूर्ण परिवार की हत्या हो गई है।"

"और हत्यारा ?"

"वह सैनिकों से लड़ता हुआ मारा गया है।"

"कौन था वह ?"

"महाराज, सुना है कि वह राजकुमार तारामीड़ था।"

महामात्य उठ खड़ा हुआ। उसने आज्ञा दी, "मेरा रथ ले आओ और पचास सैनिक बुलाओ !"

प्रतिहार गया तो विष्णुदत्त ने कहा, "नीलकण्ठ ! सुना है ?"

"हां, श्रीमान् !"

"तुम्हारा इसमे कितना हाथ है ?"

"मैं इस कुकृत्य के विषय मे कुछ नही जानता। राज्यप्रासाद मे यह हत्याकाण्ड हुआ प्रतीत होता है। मैं तो आपके पास बैठा हूं।"

"अच्छा, मेरे साथ चलो।"

दोनों निवास-गृह से बाहर आ गए। रथ और सैनिक आए तो महामात्य विष्णुदत्त राज्यप्रासाद के बाहर जा पहुंचा। वहां पांच सौ सैनिक राज्यप्रासाद को घेरे खड़े थे। ललितादित्य वहां खड़ा सेना को नगर मे शान्ति रखने के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों पर भेज रहा था। सेनाध्यक्ष नरेन्द्रदेव भी वहां उपस्थित था।

महामात्य आया तो सेनाध्यक्ष ने कहा, "महामात्य ! मेरी सम्मति है कि शवो का दाह तो प्रातःकाल होगा, परन्तु मन्त्रिमण्डल की बैठक अभी बुलानी चाहिए और घोषणा कर देनी चाहिए कि चन्द्रमीड़ का उत्तराधिकारी कौन होगा।"

"कौन-कौन मारा गया है ?"

"महाराज, महारानी, महाराज के दोनों बच्चे, तारामीड़ की पत्नी और उसके तीनो बच्चे। राजमाता घायल हैं और भिपगाचार्य उनकी मरहम-पट्टी कर रहे हैं। तारामीड़ इन हत्याओ को कर जब भागने लगा तो सैनिकों ने उसे पकड़ना चाहा और वह उनसे लड़ता हुआ मारा गया है।"

"राज्यप्रासाद के दास-दासियां ?"

"सब राज्यप्रासाद मे ही बैठे हैं। उनके साथ ललितादित्य की माता, पत्नी और बच्चे भी है।"

महामात्य ने प्रतिहार भेज मन्त्रियों को वहीं राज्यप्रासाद मे बुला लिया।

४

नीलकण्ठ जब घर से आया था तो वह पण्डित विभूतिचरण तथा सतीश को यह कहकर आया था कि वह रात के भोजन के समय लौट आएगा, परन्तु नीलकण्ठ के लौटने से पूर्व ही उनको पता चल गया कि चन्द्रमौड़ और उसके बच्चे तथा पत्नी सब मारे गए हैं। समाचार सतीश लाया था। वह मकान के बाहर हल्ला सुन भागा-भागा बाहर निकला और वहां मोहल्ले के लोगों को एकत्रित हुए देख तथा समाचार सुन आया था।

उसने जितना समाचार सुना था, पण्डित विभूतिचरण को सुना दिया, तो पण्डित फड़क उठा और कूदकर बोला, "जय भवानी ! जय दुर्गे !"

सतीश बोला, "इसमें भवानी और दुर्गा की जय कहां हुई है ?"

"सतीश !" पण्डित बोला, "तुम नहीं जानते और मैं जानता हूं कि उन्हींकी विजय हुई है।"

"पर पण्डितजी ! बाहर लोग लूटमार के लिए एकत्रित हो रहे हैं।"

"तब तो हम मारे जाएंगे। हमारी रक्षा कौन कर सकेगा ?"

सतीश ने ही बताया, "हमारे मकान के बाहर छः सैनिक नग्न खड्ग लिए खड़े हैं।"

"ओह ! वे क्यों खड़े हैं ?"

"मैंने एक से पूछा है कि वे यहां कैसे आ पहुंचे हैं ? उनमें से एक ने बताया है कि वे तो हमारी देखरेख और हमें भाग जाने से रोकने के लिए नियुक्त हैं; परन्तु वे हमें मरने भी नहीं देंगे।"

इसको सुन पण्डित विभूतिचरण की जान में जान आई। एकाएक सतीश ने कहा, "परन्तु पिताजी कहां हो सकते हैं ! मुझे उनकी चिन्ता लग रही है।"

विभूतिचरण चुप रहा। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।

भोजन का समय हुआ, परन्तु नीलकण्ठ नहीं लौटा। पण्डित तो भोजन कर निश्चिन्त हो सो गया और सतीश रात-भर बैठा पिता की प्रतीक्षा करता रहा।

सतीशादि को मोहल्ले में धनीमानी व्यक्ति समझ वहां के लोग लूटने आए थे, परन्तु वहां नियुक्त सैनिकों के कारण मकान पर आक्रमण नहीं कर सके। यह अव्यवस्था एक घण्टा-भर रही और फिर सैनिक नगर में गश्त लगाने लगे थे और यत्र-तत्र एकत्रित हो रहे लोगों को समझा तथा डराकर घरों में वापस भेज रहे थे।

प्रभात होने पर नगर में डुग्गी पिटवाई गई थी कि महाराज प्रतापादित्य के सुपुत्र ललितादित्य कश्मीर-नरेश होंगे। मन्त्रिमण्डल का यह निश्चय है कि ललितादित्य का राज्याभिषेक आज से चौदहवें दिन मध्याह्न राजभवन में होगा। तेरह दिन तक राज्य-भर में राज्य-परिवार में हुई दुर्घटना का शोक रहेगा।

प्रजा से मन्त्रिमण्डल का अनुरोध है कि शान्ति से अपने-अपने काम-काज में लगे रहें। किसी प्रकार का भी अनियमित कार्य करनेवाले की तुरन्त हत्या कर देने का आदेश सेना को कर दिया गया है।

इन तेरह दिनों में पण्डित विष्णुदत्त सब राजकीय अधिकारों से सम्पन्न राज्य-कार्य करेंगे।

यह घोषणा सतीश ने भी सुनी। घोषणा सुन तो वह प्रसन्न था, परन्तु पिताजी के न आने पर वह चिन्तित था। वह नहीं जानता था कि उन्हें कहां ढूंढ़े।

डुग्गी से की जा रही घोषणा सुन वह भीतर आया तो विभूतिचरण अभी भी अपने बिस्तर पर लेटा-लेटा अंगड़ाइयां ले रहा था। वह भीतर खाट में करवटें लेता हुआ सुन रहा था कि किसी प्रकार की घोषणा की जा रही है। घोषणा भीतर समझ नहीं आई थी। इस कारण जब सतीश भीतर आया, तो वह पूछने लगा, "क्या घोषणा थी?"

"पण्डित विष्णुदत्त सर्वाधिकारसम्पन्न महामात्य हैं। ललितादित्य भावी कश्मीर-नरेश होंगे और राज्याभिषेक तेरह दिन के शोक के उपरान्त होगा।"

"और तारामीड़?" पण्डित विभूतिचरण ने पूछ लिया।

"उसीने तो पूर्ण परिवार की हत्या की है। चन्द्रमीड़, उनकी पत्नी, महाराज के दोनों बच्चे, तारामीड़ ने अपनी पत्नी, अपने तीन बच्चे और

अपनी माता सबकी हत्या कर दी है। स्वयं वह भागनेवाला था कि सैनिकों ने उसे पकड़ना चाहा, वह उनसे युद्ध करता हुआ मारा गया है।

" पण्डितजी, यह भी सुना है कि बच्चों की रक्षा करती हुई राजमाता बुरी तरह से घायल हो गई थीं और दो घण्टे के उपरान्त वह भी मर गईं। "

"तब तो कुछ न हुआ।"

"हां, यह ठीक नहीं हुआ। ललितादित्य सैनिक-प्रवृत्ति का व्यक्ति है और सब कह रहे हैं कि अब दया-धर्म का राज्य नहीं रहेगा। अब तो खड्ग के बल पर राज्य चलेगा।"

"इसमें वैचित्र्य क्या है ?" पण्डित ने खाट से उठ एक जम्भाई और अंगड़ाई लेते हुए कह दिया, "राज्य तो खड्ग के बल पर ही चलता है। खड्ग ही दया, धर्म का राज्य चला सकती है।

" परन्तु सतीश ! हमें इन तेरह दिन के भीतर ही अपने गांव में पहुंच जाना चाहिए। "

"क्यों ?"

"इस कारण कि ललितादित्य के राज्य में किसीको भी उसकी खड्ग की धार के भीतर नहीं रहना चाहिए। विशेष रूप में हमको।"

"यही तो पूछ रहा हूं कि हमने उसका क्या बिगाड़ा है ?"

"तुम्हारे पिताजी आएंगे तो बताएंगे।"

"हां, मैं महामात्य के निवास-भवन में पता करने जा रहा हूं कि पिताजी उनको मिलने आए थे, वह कहां हैं।"

"हां, जाओ।"

परन्तु सतीश के जाने के लिए तैयार होते-होते ही नीलकण्ठ घर लौट आया। विभूतिचरण ने पूछा, "पण्डितजी, रात-भर कहां रहे ?"

" मुझे मन्त्रिमण्डल में ले लिया गया है और मन्त्रिमण्डल की बैठक में भाग लेता रहा हूं। अब तेरह दिन तक मन्त्रिमण्डल की बैठक नहीं होगी। इसपर भी हम लोग अनौपचारिक रूप में महामात्य के भवन में एकत्रित होते रहेंगे।

"आज मध्याह्नोत्तर पूर्ण राज्य-परिवार, मेरा अभिप्राय है कि

अविवाहित राजमाता के परिवार का दाह-संस्कार होगा। हमें भी उनकी अन्तिम यात्रा में उनकी अर्थी के साथ और उनके दाह-संस्कार में सम्मिलित होना चाहिए।"

"पण्डितजी !" विभूतिचरण ने कहा, "अब तारामीड़ तो रहा नहीं, फिर हमारा यहां क्या काम है ?"

"उसके संसार में न रहने पर ही तो मेरा कार्य आरम्भ हुआ है। मैं अपनी योग्यता और अनुभव से अपने देश और समाज की सुख-सुविधा के लिए यत्न करूंगा।"

"परन्तु मेरी पत्नी और दो बच्चे गांव में हैं।"

"तो आप जा सकते हैं, परन्तु मेरी सम्मति है कि आपको नये राजा के अभिषेक तक यहां रहना चाहिए। आखिर आपकी तान्त्रिक विद्या का कुछ तो पुरस्कार आपको मिलना ही चाहिए।"

"परन्तु मैं पण्डित विष्णुदत्त के सम्मुख प्रकट नहीं हो सकता। वह तो मुझे जीवित ही चिता में जला देगा।"

"नहीं पण्डितजी, वह तो दया की मूर्ति हैं। उनके सामने अपनी विद्या का तत्त्व वर्णन कर दोगे, तो वह आपको पुरस्कार देंगे और फिर आपसे कहेंगे कि बुद्धियों को सात्त्विकी बनाने के लिए विद्या का प्रयोग करो।"

"तब मुझको भूखा मरना पड़ेगा। भला बनने का कोई दाम नहीं देता। सदा बुरा करने की सामर्थ्य रखनेवाले की ही महिमा गान की जाती है।"

"उसका फल तो, पण्डितजी, भगवान अगले जन्म में देगा।"

परन्तु पण्डित को इसपर विश्वास नहीं आया। कदाचित् उसने अगले जन्म के विषय में न तो कभी विचार किया था और न ही वह उसपर विश्वास रखता था।

उपसंहार

कल्हण महाराज जयचन्द को बता रहा था—महाराज ! जन-सागर की उत्ताल तरंगों पर मनुष्य ज्ञान की छोटी-सी नौका पर सवार ऊपर-

नीचे, उछलता-लुढ़कता, अन्त में इसी सागर में विलीन हो जाता है।

सागर पर गोते खाता [illegible] नहीं जानता कि सागर के पेट में कहां क्या छुपा है, परन्तु योगी अपनी दिव्य दृष्टि से जानता है कि इस सागर में कितने मच्छ, कच्छ प्रकाश [illegible] वायु से वंचित एक-दूसरे को मारते-खाते जीवन व्यतीत कर रहे [illegible]

अत्यन्त भाग्यशाली ही जल के [illegible] नौका के आश्रय खुले वायुमण्डल का तथा सूर्य के प्रकाश [illegible] पाते हैं।

महाराज ! कल्हण वता रहा था—[illegible] देश के भाग्य ने पलटा खाया और वह फिर एक योग्य क्षत्रिय गुणों से सम्पन्न, राजनीति में कुशल राजा के अधीन एक सौ वर्ष तक शान्ति का भोग भोगता हुआ काल व्यतीत करता रहा।